जीवन-राग [खंड : 1]

जीवन-दर्शन से सम्बद्ध कविताएँ

[महेंद्रभटनागर]

(20) राग-संवेदन

.

1 यथार्थ
2 लमहा
3 निरन्तरता
4 नहीं
5 अपेक्षा
6 चिर-वंचित
7 जीवन्त
8 अतिचार
9 पूर्वाभास
10 अवधूत
11 सार-तत्त्व
12 निष्कर्ष

13 तुलना
14 अनुभूति
15 प्रार्थना
16 प्रबोध
17 यथार्थता
18 खिलाड़ी
19 सिफ़त
20 बोध-प्राप्ति
(27) अनुभूत-क्षण
21 प्रेय
22 भाग्य-विरुद्ध
23 इच्छित
24 जीवन
25 साहस
26 असंगत
27 एकाकी
28 अकेला
29 पटाक्षेप
30 विस्मय
31 मर्माहत
32 खंडित मन
33 संन्यास-चेतना
34 संबंध
35 सहवर्ती
36 वेदना
37 अंतिम अनुरोध
38 सलाह

39 दम्भ
40 अभिप्रेत-वंचित
41 अप्रभावित
42 आत्म-निरीक्षण
43 वास्तविकता
44 विराम-पूर्व — 1
45 विराम-पूर्व — 2
46 बोध
47 सच है —
(15) आहत युग
48 घटना-चक्र
49 निष्कर्ष
50 आत्म-संवेदन
51 दिशा-बोध
52 स्वीकार
53 अवधान
54 सामना
55 असह
56 मूरत अधूरी
57 मजबूर
58 कामना-सूर्य
59 एक सत्य
60 उपलब्धि
61 विचार-विशेष
62 चाह
(23) जीने के लिए
63 जीने के लिए

64 आग्रह
65 शुभैषी
66 कामना
67 कविता-प्रार्थना
68 धर्म
69 पहचान
70 चरम-बिन्दु
71 महत्त्वपूर्ण
72 भवन
73 मुक्ति-बोध — 1
74 मुक्ति-बोध — 2
75 अतृप्ति-भेंट
76 इतवार का एक दिन
77 वास्तविकता
78 लाचारी
79 विरुद्ध
80 कृतकार्य
81 विश्लेषण
82 उपलब्धि
83 एक साध: अधूरी
84 कृतज्ञता
(14) जूझते हुए
85 अपूर्ण
86 कश-म-कश
87 जन्म-दिन
88 विफल
89 निस्संग

90 इन्तज़ार
91 निष्कर्ष
92 विक्षेप
93 गन्तव्य-बोध
94 विराम
95 सीमर्थ्य-भर
96 स्थिति
97 आदमी
98 उत्तर
99 संधान
(18) संकल्प
100 बाधाएँ : चुनौती हैं
101 यथा-पूर्व
102 एकस्थ से हट कर
103 प्रतीक्षक
104 आकस्मिक
105 नियति
106 अन्तःशल्य
107 आत्म-कथा
108 अनचहा
109 समाधि-लेख
110 ग़लतफ़हमियों का बोझ
111 प्रक्रिया
112 पुनर्वार
113 प्रतिज्ञा-पत्र
114 भले ही
115 स्व-रुचि

116 टूटा व्यक्तित्व
117 जीवनी
(31) संवर्त
118 संवर्त
119 अपेक्षित
120 अनभिव्यक्ति
121 प्रश्न
122 विक्षोभ
123 अप्रत्याशित
124 नव-वर्ष
125 मेरे ही लिए
126 सुकर-दुष्कर
127 दिनान्त
128 अनुदर्शन
129 अनुशय
130 नियति
131 भिक्षा
132 विश्वास
133 जीवन प्राप्त जो
134 मोह-भंग
135 दृष्टिकोण
136 वेदना : एक दृष्टिकोण
137 संत्रस्त
138 वस्तु-स्थिति
139 उपलब्धि
140 स्वाँग
141 विपर्यस्त

142 ईर्ष्या
143 आत्म-बोध
144 ऊहापोह
145 परिवेश के प्रति
146 वात्याचक्र
147 जीवन-संदर्भ
148 वैषम्य

• •

(1) यथार्थ

.
राह का
नहीं है अंत
चलते रहेंगे हम!
.
दूर तक फैला
अँधेरा
नहीं होगा ज़रा भी कम!
.
टिमटिमाते दीप-से
अहर्निश
जलते रहेंगे हम!
.
साँसें मिली हैं
मात्र गिनती की
अचानक एक दिन
धड़कन हृदय की जायगी थम!
समझते-बूझते सब
मृत्यु को छलते रहेंगे हम!

.
हर चरण पर
मंज़िलें होती कहाँ हैं?
ज़िन्दगी में
कंकड़ों के ढेर हैं
मोती कहाँ हैं?
.
• •
(2) लमहा
.
एक लमहा
सिर्फ़ एक लमहा
एकाएक छीन लेता है
ज़िन्दगी!
हाँ, फ़क़त एक लमहा।
हर लमहा
अपना गूढ अर्थ रखता है,
अपना एक मुकम्मिल इतिहास
सिरजता है,
बार - बार बजता है।
.
इसलिए ज़रूरी है —
हर लमहे को भरपूर जियो,
जब-तक
कर दे न तुम्हारी सत्ता को
चूर - चूर वह।
.
हर लमहा
ख़ामोश फिसलता है

एक-सी नपी रफ़्तार से
अनगिनत हादसों को
अंकित करता हुआ,
अपने महत्त्व को घोषित करता हुआ!
.
• •
(3) निरन्तरता
.
हो विरत ...
एकान्त में,
जब शान्त मन से
भुक्त जीवन का
सहज करने विचारण —
झाँकता हूँ
आत्मगत
अपने विलुप्त अतीत में —
.
चित्रावली धुँधली
उभरती है विशृंखल ... भंग-क्रम
संगत-असंगत
तारतम्य-विहीन!
.
औचक फिर
स्वतः मुड़
लौट आता हूँ
उपस्थित काल में!
जीवन जगत जंजाल में!
.
• •

(4) नहीं

.

लाखों लोगों के बीच
अपरिचित अजनबी
भला,
कोई कैसे रहे!
ठमड़ती भीड़ में
अकेलेपन का दंश
भला,
कोई कैसे सहे!

.

असंख्य आवाज़ों के
शोर में
किसी से अपनी बात
भला,
कोई कैसे कहे!

.

• •

(5) अपेक्षा

.

कोई तो हमें चाहे
गाहे-ब-गाहे!

.

निपट सूनी
अकेली ज़िन्दगी में,
गहरे कूप में बरबस
ढकेली ज़िन्दगी में,
निष्ठुर घात-वार-प्रहार
झेली ज़िन्दगी में,

कोई तो हमें चाहे,
सराहे!
किसी की तो मिले
शुभकामना
सद्भावना!
अभिशाप झुलसे लोक में
सर्वत्र छाये शोक में
हमदर्द हो
कोई
कभी तो!
.
तीव्र विद्युन्मय
दमित वातावरण में
बेतहाशा गूँजती जब
मर्मवेधी
चीख-आह-कराह,
अतिदाह में जलती
विध्वंसित ज़िन्दगी
आबद्ध कारागाह!
.
ऐसे तबाही के क्षणों में
चाह जगती है कि
कोई तो हमें चाहे
भले,
गाहे-ब-गाहे!
.
• •
(6) चिर-वंचित
.

जीवन - भर
रहा अकेला,
अनदेखा -
सतत उपेक्षित
घोर तिरस्कृत!
.
जीवन - भर
अपने बलबूते
झंझावातों का रेला
झेला !
जीवन - भर
जस-का-तस
ठहरा रहा झमेला !
जीवन - भर
असह्य दुख - दर्द सहा,
नहीं किसी से
भूल
शब्द एक कहा!
अभिशापों तापों
दहा - दहा!
.
रिसते घावों को
सहलाने वाला
कोई नहीं मिला -
पल - भर
नहीं थमी
सर - सर
वृष्टि - शिला!

.
एकाकी
फाँकी धूल
अभावों में -
घर में :
नगरों-गाँवों में!
यहाँ - वहाँ
जानें कहाँ - कहाँ!
.
• •
(7) जीवन्त
.
दर्द समेटे बैठा हूँ!
रे, कितना-कितना
दुःख समेटे बैठा हूँ!
बरसों-बरसों का दुख-दर्द
समेटे बैठा हूँ!
.
रातों-रातों जागा,
दिन-दिन भर जागा,
सारे जीवन जागा!
तन पर भूरी-भूरी गर्द
लपेटे बैठा हूँ!
.
दलदल-दलदल
पाँव धँसे हैं,
गर्दन पर, टख़नों पर
नाग कसे हैं,
काले-काले ज़हरीले

नाग कसे हैं!

.

शैया पर
आग बिछाए बैठा हूँ!
धायँ-धायँ!
दहकाए बैठा हूँ!

.

• •

(8) अतिचार

.

अर्थहीन हो जाता है
सहसा
चिर-संबंधों का विश्वास -
नहीं, जन्म-जन्मान्तर का विश्वास!
अरे, क्षण-भर में
मिट जाता है
वर्षों-वर्षों का होता घनीभूत
अपनेपन का अहसास!

.

ताश के पत्तों जैसा
बाँध टूटता है जब
मर्यादा का,
स्वनिर्मित सीमाओं को
आवेष्टित करते विद्युत-प्रवाह-युक्त तार
तब बन जाते हैं
निर्जीव अचानक!
लुप्त हो जाती हैं सीमाएँ,
छलाँग भर-भर फाँद जाते हैं
स्थिर पैर,

डगमगाते काँपते हुए
स्थिर पैर!
भंग हो जाती है
शुद्ध उपासना
कठिन सिद्ध साधना!
धर्म-विहित कर्म
खोखले हो जाते हैं,
तथाकथित सत्य प्रतिज्ञाएँ
झुठलाती हैं।
बेमानी हो जाते हैं
वचन-वायदे!
और —
प्यार बन जाता है
निपट स्वार्थ का समानार्थक!
अभिप्राय बदल लेती हैं
व्याख्याएँ
पाप-पुण्य की,
छल -
आत्माओं के मिलाप का
नग्न सत्य में / यथार्थ रूप में
उतर आता है!
संयम के लौह-स्तम्भ
टूट ढह जाते हैं,
विवेक के शहतीर स्थान-च्युत हो
तिनके की तरह
डूब बह जाते हैं।
जब भूकम्प वासना का

‘तीव्रानुराग’ का
आमूल थरथरा देता है शरीर को,
हिल जाती हैं मन की
हर पुख़्ता-पुख़्ता चूल!
आदमी
अपने अतीत को, वर्तमान को, भविष्य को
जाता है भूल!
.
• •
(9) पूर्वाभास
.
बहुत पीछे
छोड़ आये हैं
प्रेम-संबंधों
शत्रुताओं के
अधजले शव!
.
खामोश है
बरसों, बरसों से
तड़पता / चीखता
दम तोड़ता रव!
इस समय तक -
सूख कर अवशेष
खो चुके होंगे
हवा में!
बह चुके होंगे
अनगिनत
बारिशों में!
.

जब से छोड़ आया
लौटा नहीं;
फिर, आज यह क्यों
प्रेत छाया
सामने मेरे?
.
शायद,
हश्र अब होना
यही है —
मेरे समूचे
अस्तित्व का!
.
हर ज्वालामुखी को
एक दिन
सुप्त होना है!
सदा को
लुप्त होना है!
.
• •
(10) अवधूत
.
लोग हैं —
ऐसी हताशा में
व्यग्र हो
कर बैठते हैं
आत्म-हत्या!
या
खो बैठते हैं संतुलन
तन का / मन का!

व हो विक्षिप्त
रोते हैं - अकारण!
हँसते हैं - अकारण!
.
किन्तु तुम हो
स्थिर / स्व-सीमित / मौन / जीवित / संतुलित
अभी तक
.
वस्तुतः
जिसने जी लिया संन्यास
मरना और जीना
एक है उसके लिए!
विष हो या अमृत
पीना
एक है उसके लिए!
.
• •
(11) सार-तत्त्व
.
सकते में क्यों हो,
अरे!
नहीं आ सकते
जब काम
किसी के तुम -
कोई क्यों आये
पास तुम्हारे?
चुप रहो,
सब सहो!
पड़े रहो

मन मारे,
यहाँ-वहाँ!

.

कोई सुने
तुम्हारे अनुभव,
कोई सुने
तुम्हारी गाथा,
नहीं समय है
पास किसी के!
निष्फल -
ऐसा करना
आस किसी से!

.

अच्छा हो
सूने कमरे की दीवारों पर
शब्दांकित कर दो,
नाना रंगों से
चित्रांकित कर दो
अपना मन!
शायद, कोई कभी
पढ़े / गुने!
या
किसी रिकॉर्डिंग-डेक में
भर दो
अपनी करुण कहानी
बख़ुद ज़बानी!
शायद, कोई कभी
सुने!

.
लेकिन
निश्चिन्त रहो —
कहीं न फैले दुर्गन्ध
इसलिए तुरन्त
लोग तुम्हें
गड्ढ़े में गाड़ / दफ़न
या
कर सम्पन्न दहन
विधिवत्
कर देंगे ख़ाक / भस्म
ज़रूर!
विधिवत्
पूरी कर देंगे
आख़िरी रस्म
ज़रूर!
.
• •
(12) निष्कर्ष
.
ऊहापोह
(जितना भी)
ज़रूरी है।
विचार-विमर्श
हो परिपक्व जितने भी समय में।
.
तत्त्व-निर्णय के लिए
अनिवार्य
मीमांसा-समीक्षा / तर्क / विशद विवेचना

प्रत्येक वांछित कोण से।
.
क्योंकि जीवन में
हुआ जो भी घटित -
वह स्थिर सदा को,
एक भी अवसर नहीं उपलब्ध
भूल-सुधार को।
.
सम्भव नहीं
किंचित बदलना
कृत-क्रिया को।
.
सत्य -
कर्ता और निर्णायक
तुम्हीं हो,
पर नियामक तुम नहीं।
निर्लिप्त हो
परिणाम या फल से।
(विवशता)
.
सिद्ध है —
जीवन: परीक्षा है कठिन
पल-पल परीक्षा है कठिन।
.
वीक्षा करो
हर साँस गिन-गिन,
जो समक्ष
उसे करो स्वीकार
अंगीकार!

.
•   •

(13) तुलना

.
जीवन
कोई पुस्तक तो नहीं
कि जिसे
सोच-समझ कर
योजनाबद्ध ढंग से
लिखा जाए / रचा जाए!
.
उसकी विषयवस्तु को —
.
क्रमिक अध्यायों में
सावधानी से बाँटा जाए,
मर्मस्पर्शी प्रसंगों को छाँटा जाए!
.
स्व-अनुभव से, अभ्यास से
सुन्दर व कलात्मक आकार में
ढाला जाए,
शैथिल्य और बोझिलता से बचा कर
चमत्कार की चमक में उजाला जाए!
.
जीवन की कथा
स्वतः बनती-बिगड़ती है
पूर्वापर संबंध नहीं गढ़ती है!
.
कब क्या घटित हो जाए
कब क्या बन-सँवर जाए,
कब एक झटके में

सब बिगड़ जाए!
.
जीवन के कथा-प्रवाह में
कुछ भी पूर्व-निश्चित नहीं,
अपेक्षित-अनपेक्षित नहीं,
कोई पूर्वाभास नहीं,
आयास-प्रयास नहीं!
ख़ूब सोची-समझी
शतरंज की चालें
दूषित संगणक की तरह
चलने लगती हैं,
नियंत्राक को ही
छलने लगती हैं
जीती बाज़ी
हार में बदलने लगती है!
.
या अचानक
अदृश्य हुआ वर्तमान
पुनः उसी तरतीब से
उतर आता है
भूकम्प के परिणाम की तरह!
अपने पूर्ववत् रूप-नाम की तरह!
.
• •
(14) अनुभूति
.
जीवन-भर
अजीबोगरीब मूर्खताएँ
करने के सिवा,

समाज का
थोपा हुआ कर्ज़
भरने के सिवा,
क्या किया?
.
ग़लतियाँ कीं
ख़ूब ग़लतियाँ कीं,
चूके
बार-बार चूके!
.
यों कहें -
जिये;
लेकिन जीने का ढंग
कहाँ आया?
(ढोंग कहाँ आया!)
और अब सब-कुछ
भंग-रंग
हो जाने के बाद —
दंग हूँ,
बेहद दंग हूँ!
विवेक अपंग हूँ!
.
विश्वास किया
लोगों पर,
अंध-विश्वास किया
अपनों पर!
.
और धूर्त

साफ़ कर गये सब
घर-बार,
बरबाद कर गये
जीवन का
रूप-रंग सिँगार!
.
छद्म थे, मुखौटे थे,
सत्य के लिबास में
झूठे थे,
अजब ग़ज़ब के थे!
.
ज़िन्दगी गुज़र जाने के बाद,
नाटक की
फल-प्राप्ति / समाप्ति के क़रीब,
सलीब पर लटके हुए
सचाई से रू-ब-रू हुए जब µ
अनुभूत हुए
असंख्य विद्युत-झटके
तीव्र अग्नि-कण!
ऐंठते
दर्द से आहत
तन-मन!
हैरतअंगेज़ है, सब!
सब, अद्भुत है!
अस्तित्व कहाँ है मेरा,
मेरा बुत है!
अब,
पछतावे का कड़वा रस

पीने के सिवा
बचा क्या?
.
ज़माने को
न थी, न है
रत्ती-भर
शर्म-हया!
.
• •
(15) प्रार्थना
.
सूरज,
ओ, दहकते लाल सूरज!
.
बुझे
मेरे हृदय में
ज़िन्दगी की आग
भर दो!
थके निष्क्रिय
तन को
स्फूर्ति दे
गतिमान कर दो!
सुनहरी धूप से,
आलोक से -
परिव्याप्त
हिम / तम तोम
हर लो!
.
सूरज,

ओ लहकते लाल सूरज!
.
• •
(16) प्रबोध
.
नहीं निराश / न ही हताश!
सत्य है -
गये प्रयत्न व्यर्थ सब
नहीं हुआ सफल,
किन्तु हूँ नहीं
तनिक विकल!
.
बार-बार
हार के प्रहार
शक्ति-स्रोत हों,
कर्म में प्रवृत्त मन
ओज से भरे
सदैव ओत-प्रोत हो!
.
हो हृदय उमंगमय,
स्व-लक्ष्य की
रुके नहीं तलाश!
भूल कर
रुके नहीं कभी
अभीष्ट वस्तु की तलाश!
हो गये निराश
तय विनाश!
हो गये हताश
सर्वनाश!

.
• •
(17) यथार्थता
.
जीवन जीना —
दूभर - दुर्वह
भारी है!
मानों
दो - नावों की
विकट सवारी है!
.
पैरों के नीचे
विष - दग्ध दुधारी आरी है,
कंठ - सटी
अति तीक्ष्ण कटारी है!
.
गल - फाँसी है,
हर वक़्त
बदहवासी है!
भगदड़ मारामारी है,
ग़ायब
पूरनमासी,
पसरी सिर्फ़
घनी अँधियारी है!
.
जीवन जीना
लाचारी है!
बेहद भारी है!
.
• •

(18) खिलाड़ी

.

दौड़ रहा हूँ
बिना रुके / अविश्रांत
निरन्तर दौड़ रहा हूँ!
दिन - रात
रात - दिन
हाँफ़ता हुआ
बद-हवास,
जब -तब
गिर -गिर पड़ता
उठता,
धड़धड़ दौड़ निकलता!
लगता है -
जीवन - भर
अविराम दौड़ते रहना
मात्रा नियति है मेरी!
समयान्तर की सीमाओं को
तोड़ता हुआ
अविरल दौड़ रहा हूँ!

.

बिना किये होड़ किसी से
निपट अकेला,
देखो —
किस क़दर तेज़ — और तेज़
दौड़ रहा हूँ!

.

तैर रहा हूँ

अविरत तैर रहा हूँ
दिन - रात
रात - दिन
इधर - उधर
झटकता - पटकता
हाथ - पैर
हारे बग़ैर,
बार - बार
फिचकुरे उगलता
तैर रहा हूँ!
यह ओलम्पिक का
ठंडे पानी का तालाब नहीं,
खलबल खौलते
गरम पानी का
भाप छोड़ता
तालाब है!
कि जिसकी छाती पर
उलटा -पुलटा
विरुद्ध - क्रम
देखो,
कैसा तैर रहा हूँ!
अगल - बगल
और - और
तैराक़ नहीं हैं
केवल मैं हूँ
मत्स्य सरीखा
लहराता तैर रहा हूँ!

लगता है -
अब, ख़ैर नहीं
कब पैर जकड़ जाएँ
कब हाथ अकड़ जाएँ।
लेकिन, फिर भी तय है µ
तैरता रहूंगा, तैरता रहूंगा!
क्योंकि
ख़ूब देखा है मैंने
लहरों पर लाशों को
उतराते ... बहते!
.
कूद - कूद कर
लगा रहा हूँ छलाँग
ऊँची - लम्बी
तमाम छलाँग-पर-छलाँग!
दिन - रात
रात - दिन
कुंदक की तरह
उछलता हूँ
बार - बार
घनचक्कर-सा लौट -लौट
फिर - फिर कूद उछलता हूँ!
.
तोड़ दिये हैं पूर्वाभिलेख
लगता है —
पैमाने छोटे पड़ जाएंगे!
उठा रहा हूँ बोझ
एक-के-बाद-एक

भारी — और अधिक भारी
और ढो रहा हूँ
यहाँ - वहाँ
दूर - दूर तक —
इस कमरे से उस कमरे तक
इस मकान से उस मकान तक
इस गाँव-नगर से उस गाँव-नगर तक
तपते मरुथल से शीतल हिम पर
समतल से पर्वत पर!
.
लेकिन
मेरी हुँकृति से
थर्राता है आकाश - लोक,
मेरी आकृति से
भय खाता है मृत्यु-लोक!
तय है
हारेगा हर हृदयाघात,
लुंज पक्षाघात
अमर आत्मा के सम्मुख!
जीवन्त रहूंगा
श्रमजीवी मैं,
जीवन-युक्त रहूंगा
उन्मुक्त रहूंगा!
.
• •
(19) सिफ़त
.
यह

आदमी है —
हर मुसीबत
झेल लेता है!
विरोधी आँधियों के
दृढ़ प्रहारों से,
विकट विपरीत धारों से
निडर बन
खेल लेता है!
.
उसका वेगवान् अति
गतिशील जीवन-रथ
कभी रुकता नही,
चाहे कहीं धँस जाय या फँस जाय;
अपने
बुद्धि-बल से / बाहु-बल से
वह बिना हारे-थके
अविलम्ब पार धकेल लेता है!
.
यह
आदमी है / संयमी है
आफ़तें सब झेल लेता है!
.
• •
(20) बोध-प्राप्ति
.
परिपक्व
कड़वे अनुभवों ने ही
बनाया है मुझे!
.

आदमी की क्षुद्रताओं ने
सही जीना
सिखाया है मुझे!
विश्वासघातों ने
मोह से कर मुक्त
भेद जीवन का
बताया है मुझे!
.
ज़माने ने सताया जब
बेइंतिहा,
काव्य में पीड़ा
तभी तो गा सका,
.
मर्माहत हुआ
अपने-परायों से
तभी तो मर्म
जीवन का / जगत् का
पा सका!
.
• •
(21) प्रेय
.
आस्था-दीप / जलता रहे
सपना एक / पलता रहे
आत्म-साधन के लिए इतना बहुत है!
.
जीवन - चक्र / चलता रहे
यम का पाश / छलता रहे
प्राण - धारण के लिए इतना बहुत है !

.
• •
(22) भाग्य-विरुद्ध
.
प्रतिपल जब हिलते हैं
रचना-धर्मी हाथ
चरणों का मिलता है
जब गति-धर्मी साथ,
.
तब बनती है तसवीर !
तब बनती है तक़दीर !
.
• •
(23) इच्छित
.
घूमा बहुत हूँ
घन अँधेरे में,
भटका बहुत हूँ
मन-अँधेरे में !
.
लिए
तम-राख लथपथ तन,
अविराम घूमा हूँ,
दिन - रात घूमा हूँ !
.
अब तो
रोशनी की धार में
जम कर नहाऊंगा,
सत्य के
आलोक-झरने में उतर

शेष जीवन-भर नहाऊंगा !
.
रोशनी में डूब कर
रोशनी में तैर कर
तन बहाऊंगा
मन बहाऊंगा
जी - भर नहाऊंगा !
.
• •
(24) जीवन
.
हर आगत पल का
स्वागत है !
.
मेरे हाथ पकड़
उठता है दिन,
मेरे कंधों पर चढ़
बढ़ता है दिन,
मेरे मन से
अभिनव रचना
करता है दिन,
मेरे तन से
सृष्टि नयी
गढ़ता है दिन,
लड़ मेरे बल पर
जीता है दिन,
क्षण-क्षण मेरे जीने पर
जीता है दिन,
.

मेरी गति से
सार्थक होता काल अमर,
मैं ही हूँ
अविजित अविराम समर,
मेरे सम्मुख हर
पर्वत-बाधा नत है,
.
हर आगामी कल का
स्वागत है !
.
• •
(25) साहस
.
माना, निरीह है आदमी किसी
अनहोनी के प्रति,
चाहे कितना समर्थ हो कोई
पर, जीतती नियति,
क्षण में ढह जाती मानव-निर्मिति —
बलवान है प्रकृति,
.
है लेकिन स्वीकार हर चुनौती —
हो जो भी परिणति,
नहीं रुकेगी, मानव ज्ञान और
विज्ञान की प्रगति !
.
• •
(26) असंगत
.
निर्जन जंगल में
खिलते-झरते फूलों का,

शूलों की शय्या पर
मूक विकल घायल फूलों का
हार्दिक स्वागत !
.
रंग - बिरंगे रस - वर्षी
रक्तिम फूलों का
उल्लास - भरा / उत्साह - भरा
मन - भावन स्वागत !
.
ऊबड़ - खाबड़
बाधक
कंटकमय पथ पर
राहत देते फूलों का
अन्तरतम से हार्दिक स्वागत !
.
लेकिन; केवल
पग - पग चुभते शूलों का अनुभव,
दूर - दूर तक बजता
खड़खड़ कर्कश उनका रव —
करता तन आहत,
मन आहत !
हे स्रष्टा !
एकांगी जीवन की रचना से
बचना !
.
• •
(27) एकाकी
.
भव्य भवनों से भरे

रौशनी में तैरते
सौन्दर्य के प्रतिबिम्ब
इस नगर में
कौन है परिचित तुम्हारा ?
कौन परिचित है ?
.
जिससे सहज बोलें
मिलें जब-तब.....
हृदय के भेद खोलें !
जिसे समझें
आत्मीय.....विश्वसनीय !
.
निःसंकोच जिसको
लिखें प्रिय-पत्र,
या दूरवाणी से करें सम्पर्क,
.
जिसके द्वार पर जा
दें अधिकार से दस्तक
पुकारें नाम !
.
ऐसा कौन है
परिचित तुम्हारा ?
अजनबी हैं सब,
अपरिचित हैं,
इतने बड़े-फैले नगर में !
कोई-कहीं
आता नहीं अपना
नज़र में !
.

• •

(28) अकेला

.

अब तो, अरे
कोई याद तक करता नहीं,
आता नहीं !

.

मृत्यु के आगोश में
ज़िन्दगी खामोश है —
अब तो, अरे
कोई गीत
मन रचता नहीं,
गाता नहीं !
वाद्य चुप हैं —
कोई स्वर
न बजता है / उभरता है !

.

जो थे —
बीच पथ में खो गये,
जो हैं —
थके - हारे / ऊब - मारे
सो गये !

.

किसको बुलाएँ,
किसको जगाएँ ?
दुनिया अपरिचित हो गयी,
हम बिराने हो गये !

.

किसके पास जाएँ,

किसे अपना बनाएँ ?
लीन हैं सब
स्वयं में,
अपने हर्ष में
ग़म में !
नहीं कोई रहा अब संग,
ज़िन्दगी बेरंग !
.
• •
(29) पटाक्षेप
.
हो गयी शाम !
कोई नहीं आयगा,
भूल जाओ
सभी नाम !
हो गयी शाम !
.
मत करो रोशनी
अँधेरा भला है,
देख लूँ स्वप्न
हर बार जिसने
छला है !
विवश मूक मन में
पला है !
.
नहीं शेष
कोई काम !
हो गयी शाम !
सो लूँ

सरे-शाम,
अविराम!
आयाम.....
आयाम!
.
• •
(30) विस्मय
.
कौन छीन ले गया हँसी फूलों की ?
कौन दे गया अरे, फ़सल शूलों की ?
कौन आह! फिर-फिर कलपाता, निर्दय
याद दिला कर, चिर-विस्मृत भूलों की ?
.
• •
(31) मर्माहत
.
मुँह कड़वा है
घूँटें कैसे भरें ?
.
जीना लाचारी है
मन बेहद भारी है
छद्म हँसी से
स्वागत कैसे करें ?
.
उजड़ा सूखा उपवन
नीरस नीरव जीवन
फूल कहाँ अब ?
पीले पत्ते झरें !
.
• •

(32) खंडित मन

.

विश्वास
टूटता है जब —
हिल उठती है धरती
अन्तर की,
अन्दर-ही-अन्दर
अपार रक्त-ज्वार बहता है !
लेकिन
व्यक्ति मौन रह
कुटिल - नियति के
संहारक प्रहार सहता है,
मूक अर्द्ध-मृत
अंगारों की शैया पर
पल-पल दहता है !

.

चीत्कारों और कराहों की
पृष्ठभूमि पर
मर - मर जीता है,
अट्ठहास भर - भर
काल-कूट पीता है !

.

विश्वास
टूटता है जब,
साथ
छूटता है जब !

.

• •

(33) संन्यास - चेतना

.
अपनों का
कुटिल विश्वासघाती खेल
जब झेल लेता है —
सरल विश्वास-धर्मी आदमी,
तब.....
एकांत में
रोता-तड़पता है,
दुर्भाग्य पर
रह-रह कलपता है !
.
किन्तु;
हत्या नहीं करता,
आत्म-हंता भी नहीं बनता;
अकेला
मानसिक नरकाग्नि में
खामोश जलता है,
स्वयं को दे असंगत सांत्वना
फिर-फिर भुलावे में भटकता है,
यों ही स्वयं को
बारम्बार छलता है !
.
उसे बुज़दिल नहीं समझो —
जानता है वह
कुछ हासिल नहीं होगा
किसी को कोसने से।
भागना क्या
भोगने से !

.
•   •

(34) संबंध

.

विश्वास का जब दुर्ग
        ढहता है —
आदमी लाचार हो
गहनतम वेदना....
        मूक सहता है !
तैयार होता है —
निरर्थक ज़िन्दगी
        जीने के लिए,
प्रति-दिन
कड़वी घूँट पीने के लिए !
जीवन-शेष दहता है !
विश्वास का जब दुर्ग
ढहता है !
या फिर —
आत्म-हंता बन
शून्य में ख़मोश बहता है !
विसर्जित कर अस्तित्व
चुपचाप कहता है —
किसी का भी
अरे, विश्वास मत तोड़ो,
विश्वास बंधन है,
विश्वास जीवन है !

.
•   •

(35) सहवर्ती

.
वेदना-धर्मी तरंगो !
और कितना
और कब-तक
गुदगुदाओगी मुझे ?
.
कितना और
कब-तक और
बेसाख़्ता
हँसाओगी मुझे ?
.
भुज-बन्ध में भर
और कितनी देर तक
और कितनी दूर तक
अनुरक्त सहयोगी
बनाओगी मुझे ?
.
ओ वेदना-धर्मी तरंगो !
क्रूर
आहत-चेतना-कर्मी तरंगो !
.
• •
(36) वेदना
.
जीवन
निष्फल जाता
सह लेता,
जब-तब
शोकाकुल स्वर से

कविता कह लेता !
लेकिन
रिसते घावों का
पीड़क अनुभव सहना,
जीवन-भर
तीव्र दहकती भट्ठी में
पल-पल दहना
संहारक है
निर्मम हत्या-कारक है !
.
यह तो
सारा सागर गँदला है,
जाने
कितने-कितने जन्मों का
बदला है !
.
• •
(37) अंतिम अनुरोध
.
निर्धन
बेहद निर्धन हूँ,
जाते-जाते
मुझको भी
जीने को
कुछ दे दो !
जो सचमुच
मेरा अपना हो
सुखदायी

मीठा सपना हो !

.

प्यासा
बेहद प्यासा हूँ,
जाते-जाते
मुझको भी
पीने को
कुछ दे दो !
निर्मल गंगा-जल हो,
झरता मधु-स्रव कल हो !

.

यों तो
अंतिम क्षण तक
तपना ही तपना है,
यात्रा-पथ पर
छाया तिमिर घना है !
एकाकी —
जीवन अभिशप्त बना,
हँसना-रोना सख़्त मना !

.

• •

(38) सलाह

.

बहुत थके हो तन
हारे अशक्त मन
सो लो !

.

गुज़री ज़िन्दगी
अजब दुशवार में,

तेज़ चक्रवातों बीच
गूँजते हाहाकार में !

.

दुखी व्यथित मन,
गहर चोट खाये तन !

.

खो
याददाश्त,
तनिक स्वस्थ
हो लो !
बहुत थके हो
सो लो !

.

• •

(39) दम्भ

.

मुझे :
छत दी
सुरक्षा दी
प्रतिष्ठा दी
एक प्यारा नाम
रिश्ते का दिया —

.

क्या इसलिए
यह कथन चरितार्थ हो —
'नफ़रत करो:
पाप-कारक कर्म से ;
पाप-चारी से नहीं ?'

.

पाप क्या है
पुण्य क्या है ?
सत्य क्या है ?
.
• •
(40) अभिप्रेत-वंचित
.
जब —
वांछित / काम्य
नहीं मिला,
जीने का क्या अर्थ रहा ?
.
कोसों फैले
लह-लह लहराते उपवन में
जब —
हृदय-समायी: मन भायी
गंध-भरा
पुलकित पाटल नही खिला ;
जीवन-भर का तप व्यर्थ रहा !
जीने का क्या अर्थ रहा !
जब अन्तर-तम में
हर क्षण, हर पल
केवल मर्मान्तक त्रास सहा !
.
माना —
बहुमूल्य अनेकों उपहार मिले
हीरों के हार मिले,
अनगिनत सफलताओं पर
असंख्य कंठों से

नभ-भेदी जय-जयकार मिले,
सर्वोच्च शिखर सम्मान मिले,
पग-पग पर वरदान मिले !
.
किन्तु;
नहीं पाया मन-चाहा —
लगता है :
दुर्लभ जीवन निष्कर्म गया,
जैसे भंग हुई
लगभग साधित-कठिन तपस्या !
दहका दाह अभावों का,
हर सपना भस्म हुआ !
निर्धन, निष्फल, भिक्षु अकिंचन —
जैसे नहीं किसी की लगी दुआ !
.
• •
(41) अप्रभावित
.
वर्षों —
जी लिया जीवन
अकेले
शेष भी
चुपचाप जी लेंगे !
विष-जल पी लिया
दिन.... रात
बेबस,
मृत्यु की उत्सुक प्रतीक्षा में !
भविष्य विनाश वीक्षा में !

विषज हर द्रव्य
हँस कर
शेष जीवन-हेतु
अपने-आप पी लेंगे !
मत करो चिन्ता —
निवासी विष-निलय का मैं,
महा शिवतीर्थ हूँ
अपने समय का मैं !

.

• •

(42) आत्म-निरीक्षण

.

जीवन में
कुछ भी
अच्छा नहीं किया !
ऐसे तो
जी लेते हैं सब,
कुछ भी लोकोत्तर
जीवन नहीं जिया !
अपने में ही
रहा रमा,
हे सृष्टा !
करना सदय क्षमा!

.

• •

(43) वास्तविकता

.

सँभलते - सँभलते...
समय तीव्र गति से

गुज़रता गया !
सब व्यवस्थित
बिखरता गया !
हस्तगत था अरे जो
अचानक फिसलता गया ....
हर क़दम पर
सँभलते-सँभलते !
.
हर तार टूटा
सँवरते-सँवरते
कि फिर-फिर उलझता गया !
बंध हर
और कसता गया ;
सूत्र
क्रमशः सुलझते-सुलझते
उलझता गया,
हर क़दम पर
सँवरते-सँवरते !
.
ज़िन्दगी कट गयी
ज़िन्दगी
सीखते-सीखते,
खो गये कंठ-स्वर
चीखते-चीखते,
शास्त्र संगीत का
सीखते-सीखते !
.
• •

(44) विराम - पूर्व : 1

.

स्मृतियाँ — फूल हैं !
रंग-बिरंगे
खिलखिलाते फूल हैं !

.

स्मृतियाँ
जागती हैं जब —
लगता है कि मानों
सज गये हर द्वार बंदनवार
चारों ओर !
जीवन महकता है
सुगन्धों से,
जीवन छलकता है
मधुर मादन रसों से,
जीवन जगमगाता है
चटक नवजात रंगों से !
आदमी
ऐसे क्षणों में डूब जाता
स्वप्न के मधु लोक में
सुध-बुध भूल !

.

दीखता सर्वत्र
अनुकूल-ही-अनुकूल,
जैसे डालियों पर
झूलते हों फूल !
झूमते हों
प्रिय अनुभूतियों के फूल !

.
• •
(45) विराम - पूर्व : 2
.
स्मृतियाँ — शूल हैं !
धँसते नुकीले शूल हैं !
.
स्मृतियाँ
जागती हैं जब —
लगता है कि मानों
उड़ रही है धूल
चारों ओर,
जीवन दहकता
कष्टकर नरकाग्नि में,
जीवन लड़खड़ाता चीखता
सुनसान में,
भर हत हृदय में हूल !
.
आदमी
ऐसे क्षणों में टूट गिरता
तिमिरमय घन गुहा में
हिल उखड़ आमूल !
दीखता सर्वत्र
प्रतिकूल-ही-प्रतिकूल,
भेदते अन्तःकरण को
तीव्र चुभते शूल !
अनइच्छित
दुखद अनुभूतियों कें शूल ।
.

• •

(46) बोध

.

अद्भुत

कश-म-कश में

दिन.... हफ़्ते... महीने....वर्ष

गुज़रते जा रहे,

विस्मय !

.

नहीं वश में

अरे, कुछ भी नहीं वश में,

'विवशता'—

अर्थ :

जीवन तो नहीं ?

.

एक दिन

यों ही अचानक

हो जाएगा लय

सब !

कहीं क्या दीखती है

विभाजक-रेख ?

फिर क्या कहा जाए —

सार्थक / व्यर्थ ?

.

अस्तित्व —

लुप्त होने के लिए,

जन्म-जागृति —

सुप्त होने के लिए,

फिर,

यह कश-म-कश किसलिए ?
गुज़रने दो
रात दिन / दिन रात
पल-क्षण,
काल-क्रम अविरत,
विषम-सम !
.
• •
(47) सच है —
.
ज़िन्दगी शुरू हुई
कि अन्त आ गया !
अभी-अभी
हुई सुबह
कि अंधकार छा गया !
.
आसमान में
सतत बिखर-बिखर
किरण-किरण
विलीन हो गयी
.
कि दूर-दूर तक
प्रखर प्रकाश की
अजस्र धार खो गयी ?
.
यहाँ-वहाँ
सभी जगह
अपार शोर था,
व्योम के

हरेक छोर तक
लाल-लाल भोर था,
राग था,
गीत था,
प्यार था,
मीत था,
विलुप्त सब !
.
रुको ज़रा —
प्रकाश आयगा,
प्रकाश का प्रवाह आयगा !
.
• •
(48) घटनाचक्र
.
हमने नहीं चाहा
कि इस घर के
सुनहरे-रुपहले नीले
गगन पर
घन आग बरसे !
.
हमने नहीं चाहा
कि इस घर का
अबोध-अजान बचपन
और अल्हड़ सरल यौवन
प्यार को तरसे !
.
हमने नहीं चाहा
कि इस घर की

मधुर स्वर-लहरियाँ
खामोश हो जाएँ,
यहाँ की भूमि पर
कोई
घृणा प्रतिशोध हिंसा के
विषैले बीज बो जाए !
.
हमने नहीं चाहा
प्रलय के मेघ छाएँ
और सब-कुछ दें बहा,
गरजती आँधियाँ आएँ
चमकते इंद्रधनुषी
स्वप्न-महलों को
हिला कर
एक पल में दें ढहा !
.
पर,
अनचहा सब
सामने घटता गया,
हम
देखते केवल रहे,
सब सामने
क्रमशः
उजड़ता टूटता हटता गया !
.
• •
(49) निष्कर्ष
.
उसी ने छला

अंध जिस पर भरोसा किया,
उसी ने सताया
किया सहज निःस्वार्थ जिसका भला !
.
उसी ने डसा
दूध जिसको पिलाया,
अनजान बन कर रहा दूर
क्या ख़ूब रिश्ता निभाया !
.
अपरिचित गया बन
वही आज
जिसको गले से लगाया कभी,
अजनबी बन गया
प्यार,
भर-भर जिसे गोद-झूले झुलाया कभी !
.
हमसफ़र
मुफ़लिसी में कर गया किनारा,
ज़िन्दगी में अकेला रहा
और हर बार हारा !
.
• •
(50) आत्म-संवेदन
.
हर आदमी
अपनी मुसीबत में
अकेला है !
यातना की राशिμसारी
मात्र उसकी है !

साँसत के क्षणों में
आदमी बिल्कुल अकेला है !
.
संकटों की रात
एकाकी बितानी है उसे,
घुप अँधेरे में
किरण उम्मीद की जगानी है उसे !
हर चोट
सहलाना उसी को है,
हर सत्य
बहलाना उसी को है !
.
उसे ही
झेलने हैं हर क़दम पर
आँधियों के वार,
ओढ़ने हैं वक्ष पर चुपचाप
चारों ओर से बढ़ते-उमड़ते ज्वार !
.
सहनी उसे ही ठोकरें—
दुर्भाग्य की,
अभिशप्त जीवन की,
कठिन चढ़ती-उतरती राह पर
कटु व्यंग्य करतीं
क्रूर-क्रीड़ाएँ
अशुभ प्रारब्ध की !
उसे ही
जानना है स्वाद कड़वी घूँट का,
अनुभूत करना है

असर विष-कूट का !
अकेले
हाँ, अकेले ही !
.
क्योंकि सच है यह —
कि अपनी हर मुसीबत में
अकेला ही जिया है आदमी !
.
• •
(51) दिशा-बोध
.
निरीहों को
हृदय में स्थान दो:
सूनापन-अकेलापन मिटेगा !
.
जिनको ज़रूरत है तुम्हारी —
जाओ वहाँ,
मुसकान दो उनको
अकेलापन बँटेगा !
.
अनजान प्राणी
जोकि
चुप गुमसुम उदास-हताश बैठे हैं
उन्हें बस, थपथपाओ प्यार से
मनहूस सन्नाटा छँटेगा !
.
ज़िन्दगी में यदि
अँधेरा-ही अँधेरा है,
न राहें हैं, न डेरा है,

रह-रह गुनगुनाओ
गीत को साथी बनाओ
यह क्षणिक वातावरण ग़म का
हटेगा !
ऊब से बोझिल
अकेलापन कटेगा
.
• •
(52) स्वीकार
.
अकेलापन नियित है,
हर्ष से
झेलो इसे !
.
अकेलापन प्रकृति है,
कामना-अनुभूति से
ले लो इसे !
.
इससे भागना-बचना —
विकृति है !
मात्र अंगीकर करना —
एक गति है !
.
इसलिए स्वेच्छा वरण,
मन से नमन !
.
• •
(53) अवधान
.
कश-म-कश की ज़िन्दगी में

आदमी को चाहिए
कुछ क्षण अकेलापन !
कर सके
गुज़रे दिनों का आकलन !
किसका सही था आचरण !
कौन कितना था ज़रूरी
या कि किसने की तुम्हारी चाह पूरी,
प्यार किसका पा सके,
किसने किया वंचित कपट से
की उपेक्षा
और झुलसाया
घृणा-भरती लपट से !
.
जानना यदि सत्य जीवन का
तथ्य जीवन का
अकेलापन बताएगा तुम्हें,
सार्थक जिलाएगा तुम्हें !
.
वरदान —
सूनापन अकेलापन !
किसी को मत पुकारो,
पा इसे
मन में न हारो !
रे अकेलापन महत् वरदान है,
अवधान है !
.
• •

.

पत्थर-पत्थर
जितना पटका
उतना उभरा !
.
पत्थर-पत्थर
जितना कुचला
उतना उछला !
.
कीचड़ - कीचड़
जितना धोया
उतना सुथरा !
.
कालिख - कालिख
जितना साना
जितना पोता
उतना निखरा !
असली सोना
बन कर निखरा !
.
ज़ंजीरों से
तन को जब - जब
कस कर बाँधा
खुल कर बिखरा
उत्तर - दक्षिण
पूरब - पश्चिम
बह - बह बिखरा !
.
भारी भरकम
चल पारा

बन कर लहरा !
.
हर ख़तरे से
जम कर खेला,
वार तुम्हारा
बढ़ कर झेला !
.
• •
(55) असह
.
बहुत उदास मन
थका-थका बदन !
बहुत उदास मन !
.
उमस भरा गगन
थमा हुआ पवन
घुटन घुटन घुटन !
.
घिरा तिमिर सघन
नहीं कहीं किरन
भटक रहे नयन !
.
बहुत निराश मन
बहुत हताश मन
सुलग रहा बदन
जलन जलन जलन !
.
• •
(56) मूरत अधूरी
.

तय है कि अब यह ज़िन्दगी
मुहलत नहीं देगी
अब और तुमको ज़िन्दगी
फ़ुरसत नहीं देगी !
.
गुज़रे दिनों की याद कर, कब-तक दहोगे तुम ?
विपरीत धारों से उलझ, कितना बहोगे तुम ?
रे कब-तलक तूफ़ान के धक्के सहोगे तुम ?
.
यों खेलने की, ज़िन्दगी
नौबत नहीं देगी,
अब और तुमको ज़िन्दगी
क़ूवत नहीं देगी !
.
साकार हो जाएँ असम्भव कल्पनाएँ सब,
आकार पा जाएँ चहचहाती चाहनाएँ सब,
अनुभूत हों मधुमय उफ़नती वासनाएँ सब,
.
यह ज़िन्दगी ऐसा कभी
जन्नत नहीं देगी,
यह ज़िन्दगी ऐसी कभी
किस्मत नहीं देगी !
.
• •
(57) मजबूर
.
ज़िन्दगी जब दर्द है तो
हर दर्द सहने के लिए
मजबूर हैं हम !
.

राज़ है यह ज़िन्दगी जब
खामोश रहने के लिए
मजबूर हैं हम !
.
है न जब कोई किनारा
तो सिर्फ़ बहने के लिए
मजबूर हैं हम !
.
ज़िन्दगी यदि ज़लज़ला है
तो टूट ढहने के लिए
मजबूर हैं हम !
.
आग में जब घिर गये हैं
अविराम दहने के लिए
मजबूर हैं हम !
.
सत्य कितना है भयावह !
हर झूठ कहने के लिए
मजबूर हैं हम !
.
• •
(58) कामना-सूर्य
.
(1) हर व्यक्ति सूरज हो
ऊर्जा-भरा,
तप-सा खरा,
हर व्यक्ति सूरज-सा धधकता
आग हो,
बेलौस हो, बेलाग हो !
.

(2) हर व्यक्ति सूरज-सा
प्रखर,
पाबन्द हो,
रोशनी का छन्द हो !
जाए जहाँ —
कण-कण उजागर हो,
असमंजस अँधेरा
कक्ष-बाहर हो !

.

(3) हर व्यक्ति सूरज-सा
दमकता दिखे,
ऊष्मा भरा
किरणें धरे,
हर व्यक्ति सूरज-सा
चमकता दिखे !

.

• •

(59) एक सत्य

.

बन्धन
उभरता है - चुनौती बन
अस्वीकृति बन,
जगाता है सतत
विद्रोह / बल / प्रतिरोध /
ज्वाला / क्रोध।

.

बन्धन
उभरता - स्नेह की उपलब्धि बन,
स्वीकार बन,

जगाता —
मोह / अक्षय सन्धि / अर्पण चाह /
जीवन - दाह।
.
• •
(60) उपलब्धि
.
सपनों के सहारे
एक लम्बी उम्र
हमने
सहज ही काट ली —
बड़े सुख से
सहन से
सब्र से !
मन के गगन पर
मुक्त मँडराती व घहराती
गहन बदली अभावों की
उड़ा दी, छाँट दी
हमने
अटल विश्वास के
दृढ़ वेगवाही वातचक्रों से
दिन के, रैन के
अनगिनत सपनों के भरोसे !
.
मौन रह अविराम जी ली
यह कठिनतम ज़िन्दगी
हमने
अमन से, चैन से !
.

सपनो !
महत् आभार,
वृहत् आभार !
.
• •
(61) विचार-विशेष
.
सपने आनन-फ़ानन साकार नहीं होते
पीढ़ी-दर-पीढ़ी क्रम-क्रम से सच होते हैं,
सपने माणव-मंत्रों से सिद्ध नहीं होते
पीढ़ी-दर-पीढ़ी धृति-श्रम से सच होते हैं !
.
• •
(62) चाह
.
जीवन अबाधित बहे,
जय की कहानी कहे !
.
आशीष-तरु-छाँह में
जन-जन सतत सुख लहे !
.
दिन-रात मन-बीन पर
प्रिय गीत गाता रहे !
.
मधु-स्वप्न देखे सदा,
झूमे हँसे गहगहे !
.
मायूस कोई न हो,
लगते रहे क़हक़हे !
.
हर व्यक्ति कुन्दन बने,

अन्तर-अगन में दहे !
.
अज्ञात प्रारब्ध का
हर वार हँस कर सहे!
.
• •
(63) जीने के लिए
.
दहशत दिशाओं में
हवाएँ गर्म
गंधक से, गरल से;
किन्तु मंज़िल तक
थपेड़े झेलकर
अविराम चलना है !
.
शिखाएँ अग्नि की
सैलाब-सी
रह-रह उमड़ती हैं ;
किन्तु मंज़िल तक
चटख कर टूटते शोलों-भरे
वीरान रास्तों से
गुज़रना है,
तपन सहना
झुलसना और जलना है !
.
सुरंगें हैं बिछी
बारूद की
चारों तरफ़
नदियों पहाड़ों जंगलों में ;

किन्तु मंज़िल तक
अकेले
खाइयों को ; खंदकों को
लौह के पैरों तले
हर बार दलना है !

.

• •

(64) आग्रह

.

आदमी को
मत करो मजबूर !
इतना कि
बेइंसाफ़ियों को झेलते—
वह जानवर बन जाय !

.

या
बेइंतिहा
दर्द की अनुभूतियों को भोगते—
वह खण्डहर बन जाय !

.

आदमी को
मत करो मज़बूर
इतना कि उसको
ज़िन्दगी
लगने लगे
चुभता हुआ
रिसता हुआ
नासूर !

.

आदमी को
मत करो
यों
इस क़दर मजबूर !
.
• •
(65) शुभैषी
.
बद्दुआओं का
असर होता अगर ;
वीरान
यह आलम
कभी का
हो गया होता !
.
जाग उठता
हर क़दम पर
आदमी का दर्प-दुर्वासा !
चिरन्तन
प्रेम का सोता
रसातल में
कभी का
खो गया होता !
.
कहाँ हो तुम
पुनीत शकुन्तले !
अभिशाप की
जीवन्त पंकिल प्रतिक्रिया !
कहाँ हो तुम ?

.
• •
(66) कामना
.
कभी तो ऐसा हो
कि हम
अपने को ऊँचा महसूस करें,
भले ही
चंद लमहों के लिए।
.
कभी तो ऐसा हो
कि जी सकें हम
ज़िन्दगी सहज
कृत्रिम मुसकान का
मुखौटा उतार कर,
बेहद तरस गया है
आदमी
सच्चे क़हक़हों के लिए !
.
कभी तो हम
रू-ब-रू हों
आत्मा के विस्तार से,
कितना तंग-दिल है
आदमी
अपरिचित
परोपकार से !
.
अंधकार भरे मन में
कभी तो

विद्युत कौंधे !
बड़ा महँगा
हो गया है
रोशनी का मोल ;
अदा कर रहा
हर आदमी
एकमात्र कृपण महाजन का
मसख़रा रोल !

.

कभी तो हम
तिलांजलि दें
अपने बौनेपन को
अपने ओछेपन को,
और अनुभव करें
शिखर पर पहुँचने का
उल्लास !
कभी तो हो हमें
भले ही
चंद लमहों के लिए,
ऊँचे होने का
अहसास !

.

• •

(67) कविता-प्रार्थना

.

आदमी को
आदमी से जोड़ने वाली,
क्रूर हिंसक भावनाओं की

उमड़ती आँधियों को
मोड़ने वाली,
उनके प्रखर
अंधे वेग को — आवेग को
बढ़
तोड़ने वाली
सबल कविता —
ऋचा है,
इबादत है !
.
उसके स्वर
मुक्त गूँजें आसमानों में,
उसके अर्थ
ध्वनित हों
सहज निश्छल
मधुर रागों भरे
अन्तर-उफ़ानों में !
.
आदमी को
आदमी से प्यार हो,
सारा विश्व ही
उसका निजी परिवार हो !
.
हमारी यह
बहुमूल्य वैचारिक विरासत है !
महत्
इस मानसिकता से
रची कविता —

ऋचा है,

इबादत है !

.

• •

(68) धर्म

.

प्यार करना
ज़िन्दगी से: जगत से
आदमी का धर्म है !

.

प्यार करना
मानवों से
मूक पशुओं पक्षियों जल-जन्तुओं से
वन-लताओं से
द्रुमों से
आदमी का धर्म है !

.

प्यार करना
कलियों और फूलों से
विविध रंगों-सजी-सँवरी
तितलियों से
आदमी का धर्म है !
प्यार करना
इन्द्रजालों से रचे
अद्भुत
विशृंखल-सूत्रा
सपनों से,
मधुरतम कल्पनाओं में
गमन करती

सुकोमल-प्राण परियों से
आदमी का धर्म है !
.
• •
(69) पहचान
.
इन अट्टालिकाओं का
गगन-चुम्बी
कला-कृत
इन्द्र-धनुषी
स्वप्न-सा
अस्तित्व
कितना घिनौना है
हमें मालूम है !
.
इनकी ऊँचाइयों का रूप
कितना
क्षुद्र, खंडित और बौना है
हमें मालूम है!
.
परियों-सी सजी-सँवरी
इन अंगनाओं का
अवास्तव छद्म आकर्षण
कितना सुशोभन है
हमें मालूम है !
.
गौर-वर्णी
कमल-पंखुरियाँ छुअन
कितनी

सुखद, कोमल व मोहन है
हमें मालूम है !
.
परिचित हम
सुगन्धित रस-भरे
इन स्निग्ध फूलों की
चुभन से,
कामना-दव से
दहकती
देह की आदिम जलन से,
वासना-मद से
महकती
देह की आदिम तपन से,
इनका बिछौना
कितना सलोना है
हमें मालूम है!
.
• •
(70) चरम-बिन्दु
.
एक लमहा
फ़र्क है
होने,
न होने में !
.
बहुत सूक्ष्म सीमा है
अस्तित्व
और
अनस्तित्व के मध्य,

फ़र्क है
सिर्फ़ रेखा भर
हँसने
और रोने में !
.
बहुत सूक्ष्म अन्तर है
अभिव्यक्ति में
अन्तःकरण की !
सम्भव नहीं है
खींचना सरहद
जनम की, मरण की !
.
स्थितियाँ —
समतुल्य हैं लगभग !
.
युग-युग सँजोयी साध
कब किस क्षण अचानक
मूर्त हो जाए ;
अमूर्त हो जाए ;
.
एक पल झपकी
बहुत है
पाने और खोने में !
एक लमहा
फ़र्क है -
होने;
न होने में !
.
• •

(71) महत्त्वपूर्ण

.

चीजें —
कोई रूप-स्वरूप तो लें,
आख़िर कोई तो रूप लें !
हम पहुँचे तो सही
(ग़लत या सही)
किसी नतीज़े पर,
किसी घर.....दर
किसी ठिकाने भर !

.

यों वियाबान में
कब-तक भटकेंगे ?
यों आग की भट्ठी में
कब-तक
तरल-तरल तड़पेंगे ?
चीजें —
कोई शक़्ल तो लें !
आखिर कोई तो शक़्ल लें !

.

मंसूबों की रेखाएँ —
स्पष्ट या धुँधला
कोई आकार-चिन्ह लें तो
आख़िर, कोई आकार-चिन्ह तो लें !
कि हम जान सकें
दिशाएँ
दूरियाँ
विस्तार !

.
विचार —
अमूर्त विचार साकार तो हों,
चिन्तन-लोक की गहराइयों में
किसी तरह तो हों साकार
अमूर्त विचार,
कि हम बना सकें दिमाग़
और पहना सकें
उन्हें
कोई भाषा-प्रारूप।
.
कहीं से
कोई तो रोशनी की किरन फूटे
अन्धकार तो छँटे
और हम अन्ध-कूप से
आएँ बाहर,
कम-से-कम बाहर तो आएँ!
.
चीजें —
रंग-रूप तो लें
हवा-धूप तो लें !
चीजें —
कोई रूप-स्वरूप तो लें !
.
• •
(72) भवन
.
कुएँ की दीवारों जैसा
ऊँचा परकोटा,

सँकरे-सँकरे गलियारों जैसा
हर कमरा छोटा,
जिसमें —
ना उपवन
ना आँगन
आधुनिक वास्तु-कला का अंकन ?
या
संकुचित हृदय की
प्रतिकृति,
स्वकेन्द्रित मन का
दर्पण !
.
• •
(73) मुक्ति-बोध (1)
.
लगता है —
बहुत कुछ बदला हुआ !
नया-नया !
लगता है —
बरसों का चढ़ा जुआ
सहसा उतर गया !
.
बरसों से —
लम्बी सँकरी
कँकरीली-पथरीली
अनइच्छित सड़कों से
तन पर, मन पर
भारी बोझा ढोते

गुज़रता रहा,
नट की तरह
रोज़-रोज़
एक ही खम्भे पर
चढ़ता-उतरता रहा !
.
शुक्र है —
अब मुक्त हूँ
हवा की तरह —
कहीं भी जाऊँ,
उड़ूँ, नाचूँ, गाऊँ !
शुक्र है —
उन्मुक्त हूँ,
लहर की तरह !
जब चाहूँ -
लहराऊँ — बल खाऊँ,
चट्टानों पर लोटूँ
पहाड़ियों से कूदूँ
वनस्पतियों पर बिछलूँ,
दौड़ूँ
बेतहाशा दौड़ूँ
या
किसी सरोवर में पसर जाऊँ,
बूँद-बूँद बिखर जाऊँ !
.
मुक्त हूँ,
कुछ इस तरह
जैसे कि

पिँजरे का द्वार
अचानक खुल जाए
पंख फड़फड़ाता तोता
दूर आकाश में उड़ जाए,
हम-उम्र — हमजोलियों में मिल जाए,
हम-ख़्वाबा के साथ खेले
उसे आगोश में ले ले
नोचे चूमे !
जो चाहे
जब चाहे
बोलेम —
ऊँचे या धीमे
आतुर या हौले !
.
लगता है —
बरसों के लिपटे नागफाँस
कट गए,
ज़हरीली बारिश के मेघ
हट गए !
.
अब
चंदन-वृक्षों पर
कस्तूरी फूल खिलेंगे
मधुर-स्रवा-सम
फूलों के गुच्छ लगेंगे !
जो कभी हुआ नहीं
लगता है —
अब होगा !

.
क्योंकि -
बहुत-कुछ
दिखता है
नया-नया
बदला हुआ !
.
• •
(74) मुक्ति-बोध (2)
.
अब
बेफ़िक्री से सोऊँगा,
बेफ़िक्री से टहलूँगा
'जनक-ताल' तक टहलूँगा,
अब नहीं होगी हड़बड़ी
तोड़ दी है हथकड़ी
हर कड़ी !
.
घंटों नहाऊँगा,
सुरे-बेसुरे
नाना गीत गा-गा कर
नहाऊँगा !
.
कहाँ हैं
मेरे
'पाकीज़ा' और गीतादत्त के रिकार्ड ?
रात के सन्नाटे में
बार-बार बजाऊँगा !
जब-तब गुनगुनाऊँगा !

.
ओ मेरे उपवन के पौधो !
तुम्हें अब कोई शिकायत नहीं होगी,
जी-भर देखूंगा
सींचूँगा
बाँहों में बाँधूंगा !
.
ओ कनेर, कचनार, अमरूद !
अब उदास मत रहो
ओ रजनीगंधा ! ओ बेला !
अब हताश मत रहो,
तुम्हारी गंध
रोम-रोम से अनुभूत होगी,
हर साँस जैसे
प्रसून-प्रसूत होगी !
.
अनजान में भी
अब नहीं रौंदूंगा
ओ मेरे उपवन की
सब्ज़ घास !
रहूंगा पास,
मख़मली तन पर लोटूंगा
आदिम कामना से भर,
सुकोमल हाथ फेरूंगा
ओ स्निग्ध रचना !
हो
प्रफुल्ल-वदना !
हर क्षण अपना है,

सच सपना है !

.

•   •

(75) अतृप्ति: भेंट

.

अब
क्या दे सकता हूँ तुम्हें—
एक गढ़ी-बनी
स्थिर मूर्ति के सिवा !
बिखरी विभूति के सिवा !

.

जो हूँ
बन चुका हूँ
ढल चुका हूँ,
प्रदत्त कोश की अधिकांश साँसें
गिन चुका हूँ,
फल चुका हूँ !

.

अब नहीं मुमकिन -
प्रयोग बतौर
तोड़ूँ-तराशूँ और,
अधबना रह जाएगा,
शेष न कह पाएगा !

.

ज़िन्दगी के इस चरण पर
कमज़ोर कंधों पर उम्र के
उतरता-डूबता सूरज मैं
क्या दे सकता हूँ तुम्हें
ऊष्मा की

पहचानी मांसल अनुभूति के सिवा।
.
तुम हो
उफ़नते अतल सागर की तरह,
जलती धधकती वासनाएँ तुम्हारी
अनापे अम्बर की तरह,
तुम्हें क्या दे सकता हूँ भला
हे भाविनी,
कल्पना प्रभूति के सिवा,
उत्तेजना आपूर्ति के सिवा !
.
• •
(76) इतवार का एक दिन
.
पूरा दिन
बीत गया इन्तज़ार में,
तमाम लोगों के इन्तज़ार में।
.
नहीं आया अप्रत्याशित भी,
नहीं टकराया अवांछित भी।
.
बीत गया
पूरा दिन,
लमहे-लमहे गिन।
.
इतवार इस बार का
नहीं लाया कोई समाचार
अच्छा या बुरा
रुचिकर या क्षुब्धकारक।

निरन्तर ऊहापोह में
गुज़र गया पूरा दिन।
.
इस या उस के
दर्शन की चाह में,
घूमते-टहलते
कमरों की राह में।
.
बस, सुबह-सुबह
आया अख़बार,
और दूध वाले ने
प्रातः-सायं बजायी घंटी
नियमानुसार।
.
अन्यथा कहीं कोई
पत्ता तक न खड़खड़ाया,
एक पक्षी तक
मेरे आकाश के इर्द-गिर्द
नहीं मँडराया।
.
बीत गया पूरा दिन
इन्तज़ार बन,
मूक लाचार बन।
.
• •
(77) वास्तविकता
.
ज़िन्दगी ललक थी; किन्तु भारी जुआ बन गयी,
ज़िन्दगी फ़लक थी; किन्तु अंधा कुआँ बन गयी,

कल्पनाओं रची, भावनाओं भरी, रूप-श्री
ज़िन्दगी ग़ज़ल थी; बिफर कर बददुआ बन गयी !
.
• •
(78) लाचारी
.
आरोपित अचाही ज़िन्दगी जी ली,
हरक्षण, हर क़दम शर्मिन्दगी जी ली,
हम से पूछते इतिहास अब क्या हो
दुनिया की जहालत गन्दगी जी ली !
.
• •
(79) विरुद्ध
.
असलियत हम छिपाते रहे उम्र भर
झूठ को सच बताते रहे उम्र भर,
आप-बीती सुनायी, कहानी बता
दर्द में गुनगुनाते रहे उम्र भर !
.
• •
(80) 'कृतकार्य'
.
जी, वाह ! क्या वाहवाही मिली,
ता-उम्र कोरी तबाही मिली,
दौलत बहुत, दर्द की, बच रही
सच, ज़िन्दगी भारवाही मिली !
.
• •
(81) विश्लेषण
.
गँवाया ही गँवाया,

कुछ नहीं पाया,
ज़िन्दगी में कुछ नहीं पाया !
.
जो बच पाये
नुकीले शूल हैं,
जो उठा लाये
बेरंग बासी फूल हैं,
        पास में
        देखो धूल
        कितनी धूल है !
.
राह पर
हर मोड़ पर,
घर में
या कि बाहर,
हाट में, बाज़ार में
विश्वास के हाथों
सदा लुटते रहे !
अपनों से
परायों से
हमेशा
छल-कपट की
तेज़ धारों की कटारों के तले
बेहद सरलता से
अरे, कटते रहे !
लोगों की
तमाम रची-बुनी
चतुराइयों-चालाकियों से

उनकी हीनताओं-क्षुद्रताओं से
बहुत चाहा —
बचना;
किन्तु
ओढ़ी सौम्यता शालीनता की
आरोपित मुखौटों की
कठिन
बेहद कठिन
पहचानना रचना !
उनके छद्म से बचना !
.
नहीं है शेष
कोई भी विरासत,
ढह गयी
जो
श्रम-पसीने से
बनायी थी इमारत !
.
• •
(82) उपलब्धि
.
उछलती-कूदती
विपरीत
लहरों से
निरन्तर जूझते,
जीवन-मरण के बीच
अस्थिर झूलते,
दिन रात

कितनी कश-म-कश के बाद
कूल मिला !
.
धीरज से
कठिनतम साधना के बाद,
जीवन-सत्त्व-स्पन्दन भर
जड़ों को सींच
टटका
मुसकराता
एक
फूल खिला !
.
• •
(83) एक साध : अधूरी
.
जी करता है
आज का दिन
ज़िन्दगी की कश-म-कश से
हटकर
बंद कमरे में
सोए-सोए गुज़ार दूँ !
.
न जाने
कितने बरसों से
निश्चिन्त बेख़बर हो
आदिम-राग का, अनुराग का
अहसास भर
सोया नहीं !
.

जी करता है
आज का दिन
निश्चेष्ट शिथिल चुप रह
चित्रामाला में अतीत की
खोए-खोए गुज़ार दूँ !
.
न जाने
कितने बरसों से
उजड़े गाँवों की राहों में
छूटे नगरों की बाँहों में
खोया नहीं !
.

जी करता है
आज का दिन
सारे वादे, काम, प्रतिज्ञाएँ
भूल कर
गंगा की लहरों-सी
तुम्हारी याद में
रोए-रोए गुज़ार दूँ !
.
न जाने
कितने बरसों से
तुम्हारी तसवीर से
रू-ब-रू हो
रोया नहीं !
.

.
छोड़ दो
यह ठोर
मन !
किसका इन्तज़ार यहाँ
अब और
मन !
.
ढल गया दिन
उतर आयी शाम,
घिर रहा
चारों दिशाओं में
अँधेरा
घनेरा !
करो स्वीकार
मन !
.
यह अकेलापन,
बड़े सुख से
करो स्वीकार
मन !
.
हे ख़ुदा !
शुक्रगुज़ार,
तेरा
बेहद
शुक्रगुज़ार !
.
• •

(85) अपूर्ण

.

कुछ रह गया

अनकहा !

.

क्षेपक कहें

या चुप रहें

.

कुछ रह गया

अन सहा !

.

• •

(86) कश-म-कश

.

बरसों से नहीं देखा —

सूर्योदय

सूर्यास्त

चाँद-तारों से भरा आकाश,

नहीं देखा

बरसों से नहीं देखा !

.

कलियों को चटकते,

फूलों को महकते

डालियों पर झूमते,

तितलियों-मधुमक्खियों को

चूमते !

बरसों से नहीं देखा !

.

मेह में न्हाया न बरसों से

पुर-जोश कोई गीत भी गाया

न बरसों से!

.

न देखे
एक क्षण भी
मेहँदी से महमहाते हाथ गदराए,
महावर से रँगे
झनकारते
दो - पैर
भरमाए !

.

न देखे
आह, बरसों से !
कुछ इस क़दर
उलझा रहा
ज़िन्दगी की कश-म-कश में —
देखना
महसूसना
जैसे तनिक भी
था न वश में !

.

• •

(87) जन्म-दिन

.

जीवन-पुस्तिका का
एक पृष्ठ
और
पूरा हुआ।
एक बरस
और जिया !

.
शुक्र है
मौत ने
नहीं छुआ !
.
आँधियों के
बीच भी
जलता रहा
दिया !
.
• •
(88) विफल
.
लहरों-सी
उफ़नती
उर-उमंगें सो गयीं,
चहचहाती डाल सन्ध्या की
अचानक
मूक-बहरी हो गयी !
प्रतीक्षा-रत
सजग आँखें
विवश चुप-चुप
रो गयीं !
निशि
हिम-कणों से सृष्टि
सारी धो गयी !
.
• •
(89) निस्संग
.

ठंडी रात,
सन्नाटा !
जब-तब कहीं कोई
थरथरा उठता पेड़,
रह-रह
सनसना उठती
हवा ।
अथवा
चीख पड़ता
दर्द में
चकवा।
.
न कोई बात ।
गहरी
बहुत गहरी
एक ख़ामोशी,
अपूर अटूट बेहोशी
शिथिल
आविद्ध।
कुंठित मन
सिहरता तन
विकल
दयनीय पक्षाघात।
सन्नाटा !
न कोई बात,
ठंडी रात !
.
• •

(90) इन्तज़ार

.

रात
ठंडी और लम्बी है —
जागते
कब तक रहेंगे ?

.

रात
गीली
ओस-भीगी,
शीत का
अभिशाप
कितना और...
चुप-चुप सहेंगे ?

.

थरथराता गात,
कुहरे में
झुके हैं पात,
अपनी
वेदना को और....
कब तक कहेंगे ?

.

• •

(91) निष्कर्ष

.

ज़िन्दगी —
वीरान
मरघट-सी,
ज़िन्दगी —

अभिशप्त
बोझिल और एकाकी
महावट-सी !
.
ज़िन्दगी —
मनहूसियत का
दूसरा है नाम,
ज़िन्दगी —
जन्मान्तरों के
अशुभ
पापों का
दुखद परिणाम !
.
ज़िन्दगी —
दोपहर की
चिलचिलाती
धूप का अहसास,
ज़िन्दगी —
कंठ-चुभती
सूचियों का बोध
तीखी प्यास !
.
ज़िन्दगी —
ठहराव
साधन-हीन
रिसता घाव
ज़िन्दगी —
अनचहा संन्यास

मात्र तनाव !

.

• •

(92) विक्षेप

.

मन के राज्य में
देखे
स्वप्न जो रंगीन,
मांसल कल्पनाओं में
रहे जो लीन,
मिथ्या वासना अतिचार -
समझा किये
सुख-स्वर्ग का संसार।
पृथ्वी का महत् वरदान,
सम्भव कामनाओं का
चरम सोपान।
जन्म सार्थकता —
सतत उपभोग-मादकता।
अमित रस-सृष्टि —
जीवन-दृष्टि।

.

किन्तु
जगत् यथार्थ
कितना भिन्न !
सपनों में रचाया लोक
रेशम-सी नरम चिकनी
बुनावट कल्पनाओं की
तनिक में छिन्न !

.

कोई
भाग्यशाली
शक्तिशाली
कुछ क्षणों को
कर सका साकार
औचट
या कि कर अपहार !
.
औरों के लिए
केवल
विसंगति
आत्म-रति।
.
• •
(93) गन्तव्य-बोध
.
हमने
उस दिन
ब्राह्म-मुहूर्त में
बड़े उत्साह से
अपनी यात्रा .....अविच्छिन्न यात्रा
शुरू की थी,
यह सोच कर
कि मंज़िल पर पहुँचेंगे
निश्चित पहुँचेंगे।
.
हमने
उस दिन
रात के धुँधियारे में

बड़े विश्वास से
अपनी यात्रा ..... निरन्तर यात्रा
शुरू की थी,
यह सोच कर
कि साहिल पर पहुँचेंगे
संशयहीन...पहुँचेंगे।
.
ऊबड़-खाबड़ राह से
गुज़रते हुए,
गहरे-गहरे गड्ढों की
थाह लेते हुए
हम अपनी यात्रा पर
निश्चल मन से —
चल पड़े थे।
माना कि
जगह-जगह
अनेक व्यवधान अड़े थे
खड़े थे,
टूटन थी
फिसलन थी।
.
हमारी गति को
आँधियों ने रोका,
बार-बार
वज्रवाही बादलों ने टोका !
पर,
हम रुके नहीं,
वैपरीत्य के सम्मुख

झुके नहीं।
.
क्रमशः
हमारा पथ प्रशस्त हुआ;
और हम
एक दिन
धड़कते दिल से
पड़ाव पर पहुँचे !
.
थक कर चूर
शिथिल
मजबूर
जड़ता-बद्ध।
.
क्रमशः
अहसास जगता है:
मंज़िल अंत नहीं,
आधार है
प्रवेश-द्वार है
जीवन की रंगभूमि है—
कर्मभूमि है !
.
उसे स्वप्न-भूमि समझने की
भूल क्यों की ?
.
इससे तो बेहतर था
उसी बिन्दु पर बने रहना
जहाँ से यात्रा शुरू की थी।
.

•   •

(94) विराम

.

कर चुकी
ज़िन्दगी
दूरियाँ
   तय !

.

चीखती
हाँफ़ती
ज़िन्दगी
कर चुकी
अनगिनत
ऊर्ध्व ऊँचाइयाँ
ग़ार गहराइयाँ
        तय !

.

थम गया
भोर का
शाम का
गूँजता
    शोर,
गत उम्र की
राह पर
थम गया,
एक
आह बन
शून्य में

हो गया
लय !
कर चुकी
ज़िन्दगी
मंज़िलें
तय !
.
• •
(95) सामर्थ्य-भर
.
जीवन —
मात्रा एक यात्रा है,
अनन्त राह पर
अन्तहीन यात्रा है !
.
विश्रांति-हेतु
क्षण-भर रुकना
आगे बढ़ने का
केवल उपक्रम है।
.
मंज़िल —
दूर,
बहुत दूर,
समय —
कम,
बेहद कम है !
.
• •
(96) स्थिति
.

समेटे सिमटता नहीं
बिखराव !
नहीं है दिशा का पता
भटकाव !
जटिल से जटिलतर हुआ
उलझाव !
हुआ कम न, बढ़ता गया
अलगाव !
.
• •
(97) आदमी
.
आज
जंगल के
भयावह हिंस्र आदमखोर पशुओं से
सुरक्षित
आदमी।
.
ऋतुओं के
विनाशक तेवरों से
है न किंचित्
भीत, आशंकित व चिन्तित
आदमी।
.
प्रकृति के
नाना प्रकोपों से
स्वयं को,
अन्य जीवों को
बचाना जानता है

आदमी।

.

शून्य की
ऊँचाइयों पर
जा पहुँचना
है सरल
उसको।
सिन्धु की
गहराइयों की
थाह लेना
है सहल
उसको।

.

किन्तु अचरज
आदमी है
आदमी से आज
सर्वाधिक अरक्षित,
आदमी के ही
मनोविज्ञान से
बिल्कुल अपरिचित।

.

भयभीत
घातों से
परस्पर।
रक्ताक्ष
आहत
क्रुद्ध
ज़हरी व्यंग्य बातों से

परस्पर।

.

टूट जाता आदमी —
आदमी के
क्रूर
मर्मान्तक प्रहारों से,
लूट लेता आदमी —
आदमी को
छल-भरे
भावों-विचारों से।

.

आदमी —
आदमी से आज
कोसों दूर है,
आत्मीयता से हीन
बजता खोखला
हर क़दम
सिर्फ़ ग़रूर है।

.

• •

(98) उत्तर

.

नहीं किंचित् बनूंगा
दीन,
या
ग़मगीन।
क्षति स्वीकारता हूँ !

.

धूर्त —

गुप-चुप
रच रहे षड्यंत्र,
बैठे हैं लगाए घात,
कैसे कर लिया
तुमने
अनोखा फ़ैसला
सुन
एकतरफ़ा बात ?
.
तुमसे
है नहीं अनुनय-विनय
धिक्कारता हूँ !
यों कभी भी
हो न सकता हीन !
क्षति स्वीकारता हूँ !
.
अपने
चाटुकारों की
विगर्हित क्षुद्र
इच्छा-पूर्ति के हित,
कर दिया तुमने
क्षणिक अधिकार से वंचित ?
तुम्हारे
मसख़रे निर्लज्ज
गंदे खल घिनौने
रूप को
दुत्कारता हूँ !
.

जान लो
अच्छी तरह पहचान लो —
होता नहीं इससे
तनिक भी क्षीण !
क्षति स्वीकारता हूँ !
.
• •
(99) संधान
.
इस बीच :
जीये किस तरह —
हम ही जानते हैं !
कितना भयावह था
लहरता-उफ़नता-टूटता
सैलाब —
हम ही जानते हैं !
.
अर्थ :
जीवन का : जगत् का
गूढ था जो आज तक
अब हम
उसे अच्छी तरह से
हाँ,
बहुत अच्छी तरह से
जानते हैं !
.
असंख्य परतों को लपेटे
आदमी
अब पारदर्शी है,

भीतर और बाहर से
उसे हम
सही,
बिलकुल सही
पहचानते हैं !
.
आओ, तुम्हें —
हाँफ़ते,
दम तोड़ते
तूफ़ान की गाथा सुनाएँ !
जलती ज़िन्दगी से जूझते
इंसान की गाथा सुनाएँ !
.
• •
(100) बाधाएँ : चुनौती हैं!
.
बाधाएँ —
निरुत्साहित नहीं करतीं हमें,
प्रतिक्षण बनातीं
बल सजग।
कठिनाइयों के सामने
पग
डगमगाते हैं नहीं,
प्रत्युत्
लगा कर पंख बिजली के
धरा-आकाश का विस्तार लेते नाप !
बाधाएँμ
'विकट, दुर्लंध्य, अविजित'

है निरा अपलाप !
.
बाधाएँ —
बनातीं परमुखापेक्षी नहीं हमको,
बाधाएँ —
बनाती हैं न किंचित दीन
उद्यमहीन हमको।
.
वे जगातीं
सुप्त अन्तर-शक्तियाँ सारी
न भय रहता, न लाचारी !
.
कौंधती बिजली सबल तन में
उभरते दृढ़ नये संकल्प मन में !
.
बाधाएँ: चुनौती हैं !
इन्हें स्वीकारना —
पर्याय :
मानवता-महत्ता का !
इन्हें स्वीकारना —
उद्घोष :
जीवन की चिरन्तन
ऊर्ध्व सत्ता का !
इन्हें स्वीकारना —
पहचान :
तेजस्वी,
सतत गतिमान
मानव के पराक्रम की !

इन्हें स्वीकारना —
अनुभूति :
चिर-परिचित
मनुज-इतिहास-प्रमाणित
अथक श्रम की !
.
बाधाएँ —
हतोत्साहित नहीं करतीं कभी
बाधाहरों को !
वे बनातीं
और भी दृढ़
धारणाओं को।
.
कठिन के सामने मेधा
कभी होती नहीं दूषित,
वरन्
उद्भावना उन्मेष से भर
और हो उठती प्रखर !
.
प्रत्येक बाधा
हीन होगी,
नष्ट
शून्य-विलीन होगी !
.
• •
(101) यथा-पूर्व
.
हमें
सामर्थ्य-क्षमता का

परिज्ञान कैसे हो ?
.
हमें
सम्भावनाओं का
अनुमान कैसे हो ?
.
हम अपरिणामी, तटस्थ, अयुक्त
स्थितियों में
जीते हैं !
.
• •
(102) एकस्थ से हटकर
.
स्थितियाँ
जब बदलती नहीं—
गतिशीलता
अवरुद्ध होती है,
कहीं एकस्थ हो
आवेश का विस्तार खोती है।
.
स्थितियों का
बदलना
टूटना
बेहद ज़रूरी है,
भले ही—
नयी स्थितियाँ
नितान्त विरुद्ध हों
संदिग्ध हों।
.
• •

(103) प्रतीक्षक

.

अभावों का मरुस्थल
लहलहा जाये,
नये भावों भरा जीवन
पुनः पाये,
प्रबल आवेगवाही
गीत गाने दो !

.

गहरे अँधेरे के शिखर
ढहते चले जाएँ,
उजाले की पताकाएँ
धरा के वक्ष पर
सर्वत्र लहराएँ,
सजल संवेदना का दीप
हर उर में जलाने दो !
गीत गाने दो !

.

अनेकों संकटों से युक्त राहें
मुक्त होंगी,
हर तरफ़ से
वृत्त टूटेगा
कँटीले तार का
विद्युत भरे प्रतिरोधकों का,
प्राण-हर विस्तार का !

.

उत्कीर्ण ऊर्जस्वान
मानस-भूमि पर

विश्वास के अंकुर
जमाने दो !
गीत गाने दो !
.
• •
(104) आकस्मिक
.
स्थूल निर्जीव पदार्थों की
प्रत्येक गति
नियति
कार्य-कारण-बद्ध है,
सृष्टि का प्रत्येक कम्पन
धीमा
अथवा विराट
प्राकृतिक नियमों से सिद्ध है।
.
पर,
संवेदनशील प्राणियों की
पारस्परिक
संगति
निकटता
आत्मीयता
मात्र एक संयोग है !
.
तभी तो —
इतनी बड़ी दुनिया में
अरबों मनुष्यों की दुनिया में
करोड़ों लोग अकेले हैं,
किसी का साथ पाने के लिए

किसी को
हमसफ़र बनाने के लिए
आकुल हैं,
व्याकुल हैं !
.
आवश्यकताएँ हैं :
पर,
पूर्तियाँ नहीं !
अर्चनाएँ हैं :
पर,
मूर्तियाँ नहीं !
.
भटकनें हैं :
बाट नहीं !
नदियाँ हैं :
घाट नहीं !
.
सर्वत्र
तलाश-ही-तलाश है !
ज़िन्दगी :
डोलती
बोलती
लाश है !
.
हाथ आया स्वर्ण
जब
मिट्टी में बदल जाता है,
बड़ी कोशिशों से पाया

अपनाया
जब
पराया निकल जाता है !
.
तब
लगता है:
जीवन कारण-हीन है !
मनुष्य
सचमुच, दीन है !
प्रतीक्षा करो !
अनाचक की
प्रतीक्षा करो !
.
जीवित सम्पर्क
बनाये नहीं जाते,
बन जाते हैं !
मनचाहे स्वप्न
बुलाये नहीं जाते,
स्वतः आते हैं !
.
ओ विश्व भर के
अभिशप्त मानवो !
प्रतीक्षा करो !
अचानक की
प्रतीक्षा करो !
.

.

मझधार में बहते हुए
बस, देखते जाओ
किनारे-ही-किनारे,
पर नहीं,
वे बन सकेंगे
एक दिन भी
तुम थके-हारे
अकेले के
सहारे !
क्योंकि वे अधिकृत,
तुम अवांछित !
सतत बहते रहो,
प्रतिकूलता
सहते रहो !

• •

(106) अन्तःशल्य

रह गये
कितने अदेखे फूल,
अन्तस में अजाने
हूलते हैं शूल !

• •

(107) आत्म-कथा

क्या जीता हूँ !
अनुदिन कड़वाहट पीता हूँ,
मधु का सागर लहराता है—

पर,
कितना रीता हूँ !
सचमुच,
क्या जीता हूँ ?
.
• •
(108) अनचहा
.

मैंने नहीं चाहा -
दृष्टि-पथ पर दूर तक
रंगीन सपनों के चरण
न घूमें!
मैंने नहीं चाहा -
जीवन के गगन में
सावनी के स्वर
न गूँजें!
रस-वर्षिणी
घन बदलियाँ
न झूमें!
मैंने नहीं चाहा
मधु कल्पनाओं के
विफलता की थकन से
पंख जाएँ टूट,
यौवन
उमड़ती ज्वार की लहरें
न चूमे !
.

पर,
सब अनचहा होता गया,
स्वप्न सारे
हो गये विकलांग,
सावन की सरसता
खो गयी,
अनुरक्त अन्तस की
मधुरता जब
विषैली हो गयी !
.
• •
(109) समाधि-लेख
.
कोई नहीं है तुम्हारे लिए
कोई नहीं है किसी के लिए,
दुनिया निरी ख़ुदग़रज़ है !
.
मरण पर हमारे—
कोई विकल बन
करुण गीत गाये
व आँसू बहाये,
मधुर याद में
(ज़िन्दगी भर !)
सजल प्राण-दीपक जलाये,
यह सोचना -
एक खाली मरज़ है !
दुनिया बड़ी ख़ुदग़रज़ है !
.
स्वयं को न दें

व्यर्थ
इतनी महत्ता,
समझ लें
उचित
भ्रम-रहित हो
स्व-अस्तित्व की
अर्थवत्ता,
इसमें नहीं कुछ हरज़ है !
जब कि
दुनिया निपट ख़ुदग़रज़ है !
.
• •
(110) ग़लतफ़हमियों का बोझ
.
हमारे पारस्परिक संबंधों को
बरसों के पनपते-बढ़ते रिश्तों को
निकटता और आत्मीयता को
ग़लतफ़हमी
अक्सर पुरज़ोर झकझोर देती है
तोड़ देती है,
हमें एक दूसरे के विपरीत
मोड़ देती है !
.
हमारे सौमनस्य का अतीत
झूठा बेमानी हो लेता है,
हमारे सद्भाव का इतिहास
महज़ एक स्वाँग साबित हो
सारे व्यतीत घटना-चक्रों को

अकल्पित अद्भुत सन्दर्भों की पीठिका में
प्रस्थापित कर देता है !
.
हम
अन्यथा के प्रति आश्वस्त हो
सचाई की व्याख्या
बदलने के लिए
विवश हो जाते हैं,
अँधेरे में
और अँधेरे में
और-और अँधेरे में
खो जाते हैं !
.
ग़लतफ़हमी
मानव-आस्था के मर्म को
निरन्तर विदलित करती है,
जीवन-रस को
एक और अनेक ग़लतफ़हमियाँ
निरन्तर खोखला कर
अवशोषित करती हैं !
.
ग़तलफ़हमियों का शिकार बनना
सचमुच
एक शाप है,
ग़लतफ़हमियों को बार-बार भोगना
सचमुच
एक विषम शाप-ज्वर संताप है !
.

न जाने
किन शापों के फलस्वरूप
मुझे
ग़लतफ़हमियों के तोहफ़े,
मिथ्या आरोपों
और लांछनों के तोहफ़े
खूब मिले हैं,
जिन्हें
जीवन की पीठ पर लादे
मैं घूम रहा हूँ !
ग़लतफ़हमियों का यह गट्ठर
अपने आकार में
और कितना फैलेगा-बढ़ेगा ?
यह मेरी जिजीविषा के वेग को
और कितना रोकेगा ?
.
क्या सारे रिश्तों को तोड़ दूँ ?
ग़लतफ़हमियों के इस बोझ को
एक-बारगी फेंक दूँ ?
व्यक्ति और समाज की
चिन्ता से मुक्त
जीवन को
निर्जीव पदार्थ सत्ता से जोड़ दूँ ?
संवेदन का गला घोंट दूँ ?
.
• •
(111) प्रक्रिया
.

मैंने
जीवन का व्याकरण
नहीं पढ़ा,
शायद,
इसीलिए —
सही अर्थों में
जीना नहीं आया !
.
आत्म-प्रकाशन में
असफल अभिव्यक्ति-सा
प्रभाव-शून्य बना रहा,
इसीलिए —
रात-दिन
घर-बाहर
अनमना रहा !
.
मैंने
जीवन-जगत व्यवहार के
विशिष्ट शब्दों
शब्द-रूपों
और उनके प्रयोगों का
ज्ञान हासिल नहीं किया,
इसीलि —
तथाकथित समाज ने
मुझे अपने में
शामिल नहीं किया !
मैंने नहीं सीखा
व्यक्ति-व्यक्ति में

भेद करना,
स्थूल और सूक्ष्म
अन्तर-प्रणाली की
वैज्ञानिकता
मेरी समझ में नहीं आयी,
जो कुछ कहा
वह
व्याख्या की परिधि में
नहीं समाया,
शायद,
इसीलिए मेरा कथन
किसी को नहीं भाया !
.
मैंने
जीवन का व्याकरण
नहीं पढ़ा,
शायद,
इसीलिए —
अन्यों की तरह
सुख-चैन का
जीना नहीं आया !
.
निरन्तर
जीवन की अभिधा में
पलता रहा,
लाक्षणिकता के
गूढ व्यंजना के
आडम्बर नहीं फैलाये,

बहु-प्रचलित कडवे तेल के दिये-सा
आले में
चुपचुप जलता रहा,
मुहावरेदानी के
रुपहले ट्यूब
तैल-लेपित दीवारों पर
नहीं रोशनाये,
शायद,
इसीलिए —
समाज का मन-रंजन नहीं हुआ
वांछित आवर्जन नहीं हुआ !
.
दुनिया की चमक-दमक में
डूबा-इठलाया नहीं,
वक्र ताल पर
ध्वनि-सिद्ध कोई गीत
गाया नहीं,
.
अलंकार-सज्जित पात्रा में
रीति-बद्ध ढंग से
जीवन का रस
पीना नहीं आया !
मैंने
जीवन का व्याकरण
नहीं पढ़ा,
शायद,
इसीलिए —
निपुण विदग्धों के समकक्ष

जीना नहीं आया !

.

• •

(112) पुनर्वार

.

मैं

एक वीरान बीहड़

जंगल में रहता हूँ,

अहर्निश

निपट एकाकीपन की

असह्य पीड़ा

सहता हूँ !

.

मैंने

यह यंत्रणा-गृह

कोई

स्वेच्छा से नहीं वरा,

मैंने

कभी नहीं चाहा

निर्लिप्त

निस्संग

जीवन का यह

जँगलेदार कठघरा !

.

जिसमें

शंकाओं से भरा

सन्नाटा जगता है,

जीना

अर्थ-हीन अकारण-सा

लगता है !
.
समय-असमय
जब दहक उठते हैं
मुझमें
हिंस्र पशुता के
अग्नि-पर्वत,
प्रतिशोध-प्रतिहिंसा के
लावा नद
जब लहक उठते हैं
आहत
क्षत-विक्षत
चेतना पर,
तब यह
वीरान बीहड़ जंगल ही
निरापद प्रतीत होता है !
.
(सचमुच
कितना बेबस
मानव के लिए
अतीत होता है !)
.
यह गुंजान वन
यह अकेलापन
मेरी विवशता है !
मुझे
विवशता की पीड़ा
सहने दो,

.
दहने दो,
दहने दो !
.
जंगल जल जाएंगे,
लौह-कठघरे गल जाएंगे !
.
मैं आऊंगा
फिर आऊंगा,
निज को विसर्जित कर
सामूहिक चेतना का अंग बन
अन्तहीन भीड़ में
मिल जाऊंगा !
.
स्व के दंश जहाँ
तिरोहित हो जाएंगे,
या अवचेतना की
अथाह गहराइयों में
सो जाएंगे !
.
• •
(113) प्रतिज्ञा-पत्र
.
टूट
गिरने दो
पीड़ाओं के पहाड़
बार-बार
अमर्त्य व्यक्तित्व मैं
अविदलित रहूंगा !
.

आसमान पर
घिरने दो
वेगवाही
स्याह बदलियाँ,
गरजने दो
सर्वग्रही प्रचण्ड आँधियाँ
लौह का अस्तित्व मैं
अपराजित रहूंगा !
.
लक्ष-लक्ष
वृश्चिकों के
डंक-प्रहार,
ठठने दो
अंग-अंग में
विष-दग्ध लहरें ज्वार
व्रतधर सहिष्णु मैं
अविचलित रहूंगा !
.
• •
(114) भले ही
.
भले ही —
काटती हों
चेतना को,
दंश जैसी
ये तुम्हारी
डाह-संकेतक
उपेक्षा-बोधनी

दृग-भंगिमाएँ !
.
भले ही —
सालती हों
मर्म को
उपहास-प्रेरित
ये तुम्हारी
अग्नि-शर-व्यंग्योक्तियों की
क्रूर-धर्मी यातनाएँ !
सामने प्रस्तुत
विकर्षण-युक्त प्रतिमाएँ !
.
इन्हें पहचानता हूँ,
आदि से इतिहास इनका
जानता हूँ।
है सही उपचार इनका
पास मेरे,
कुछ नहीं बनता-बिगड़ता
आज यदि
ठहरी रहें ये
क्षितिज घेरे !
.
• •
(115) स्व-रुचि
.
फोटो में मुझे
अपनी शक़्ल नहीं भायी !
मैंने पुनः
बड़े उत्साह से

अपने चित्रा खिँचवाये—
भिन्न-भिन्न पोज़ दिये,
फोटोग्राफ़र के संकेतों पर
गम्भीरता कम कर मुसकराया भी,
चेहरे पर भावावेश लाया भी,
पर पुनः
मुझे उन फोटुओं में भी
अपनी शक़्ल नहीं भायी,
तनिक भी स्व-रुचि को
रास नहीं आयी !
.
पर, क्या वे शक्लें
मेरी नहीं ?
क्या वे बहुरंगी पोज़
मेरे नहीं ?
.
वस्तुतः
हम फोटो में यथार्थ आकृति नहीं,
अपने सौन्दर्य-बोध के अनुरूप
अपने को चित्रित देखना चाहते हैं,
अपने ऐबों को
गोपित या सीमित देखना चाहते हैं !
.
• •
(116) टूटा व्यक्तित्व
.
बचपन में
किसी ने यदि—
न देखा

स्नेह-सिंचित दृष्टि से
अति चाव से,
और पुचकारा नहीं
भर अंक
वत्सल-भाव से,
        तो व्यक्ति का व्यक्तित्व
        निश्चित
        टूटता है।
.
यौवन में
नहीं यदि —
पा सका कोई
प्रणयिनी
संगिनी का
प्रेम:
        निश्छल
        एकनिष्ठ
        अनन्य !
जीवन —
        शुष्क
        बोझिल
        मरुस्थल मात्र
        तृष्णा-जन्य !
        तो उस व्यक्ति का व्यक्तित्व
        अन्दर और बाहर से
        बराबर
        टूटता है।
.

वृद्ध होने पर
नहीं देती सुनायी
यदि —
प्रतिष्ठा-मान की वाणी,
न सुनना चाहता कोई
स्व-अनुभव की कहानी,
मूक
इस अन्तिम चरण पर
व्यक्ति का व्यक्तित्व
सचमुच,
चरमराता है
सदा को
टूट जाता है !

.

• •

(117) जीवनी

.

चित्र जो
अतीत धुन्ध में
समा गया —
उसे
पुनः-पुनः
उरेहना।

.

जो बिखर गया
जगह-जगह
व्यतीत राह पर —
उसे

विचार कर
समेटना।
.
जो समाप्त-प्राय —
बार-बार
चाह कर
उसे
सहेजना।
.
रीति-नीति
काव्य की नहीं !
.
जीवनी :
विगत प्रवाह,
जी चुके।
काव्य:
वर्तमान
वेगवान
जी रहे।
.
• •
(118) संवर्त
.
पथ का मोड़
भाता है मुझे !
.
बहुत लम्बी डगर से
ऊब जाता हूँ,
अकारण ही

थकावट की शिथिलता में
न समझे डूब जाता हूँ !
सनातन
एक-से पथ पर
नयापन जब नज़र आता नहीं
मुझसे चला जाता नहीं !
.
तभी तो
हर नवागत मोड़ का
स्नेहिल
हृदयहारी
भाव-भीना
मुग्ध स्वागत !
इसमें हर्ज़ क्या है—
पथ का मोड़
यदि इतना सुहाता है मुझे ?
पथ का मोड़ भाता है मुझे !
.
• •
(119) अपेक्षित
.
सरस अधरों पर
प्रफुल्लित कंज-सी
मुसकान हो !
या
उमंगों से भरा
मधु-गान हो !
.
मुसकान की

मधु-गान की
अभिशप्त इस युग में
कमी है !
अत्यधिक अनवधि
कमी है !
मात्र —
नीरव नील होठों पर
बड़ी गहरी परत
हिम की जमी है !
.
प्रत्येक उर में
वेदना की खड़खड़ाती है फ़सल,
आह्लाद-बीजों का नहीं अस्तित्व,
केवल
झनझनाते अंग,
मानव
चित्र-रेखा-वत्
खोजता सतरंग !
.
• •
(120) अनभिव्यक्त
.
व्यक्ति —
अपनी अकल्पित हर व्यथा की
सर्व-परिचित परिधि !
.
किंचित् अनाकृत अतिक्रमण
अपने-पराये के लिए रे
अतिकथा,

अरुचिकर अतिकथा !
.
अनुभूत जीवन-वेदना
बस
बाँध रक्खो
पूर्व निर्धारित परिधि में,
व्यक्ति के परिवेश में,
अवचेतना के देश में।
.
• •
(121) प्रश्न
.
किसने
अनास्था के हज़ारों बीज
मानस-भूमि पर
छितरा दिये ?
.
किसने
हमारी अचल निष्ठा के
विरल अनमोल माणिक
संशयावह राह पर
बिखरा दिये ?
.
रीती अश्रद्धा के
नुकीले शूल
चरणों में चुभा
विश्वास की
अक्षय धरोहर छीन ली ?
किसने

अचानक
खोखले दर्शन-कथन से,
सत्य
अनुभव-सिद्ध
जीवन-मान्यताओं की
अकुण्ठित ज्ञान-गुरुता हीन की ?
.
किसने
विनाशक आँधियों के वेग से
विचलित किये
उन्नत गगन-चम्बी
हमारी लौह-आस्था के शिखर ?
.
• •
(122) विक्षोभ
.
इच्छाएँ हमारी—
त्रस्त हैं,
उद्विग्न हैं,
आकार पाने के लिए !
.
आसंग इच्छाएँ—
जिन्हें हमने
बड़े ही यत्न से
गोपन-सुरक्षित स्थान पर रक्खा सदा
वांछित अनागत की प्रतीक्षा में !
.
विविक्षित भावनाएँ
आकुलित हैं,

आक्रमित हैं,
वास्तविक अनुभूति का
आधार पाने के लिए !
.
पर,
वायुमण्डल में
न जाने किस तरह की
अश्रुवाही वाष्प है परिव्याप्त ;
जिससे हम विवश हैं
मूक रोने के लिए,
आक्रोश तृष्णा भार ढोने के लिए !
.
• •
(123) अप्रत्याशित
.
सदा.... सदा की तरह
नव मेघों के उपहारों की
लेकर बाढ़
आया आषाढ़ ;
पर,
तीव्र पिपासाकुल चातक ने
कुछ न कहा,
सूनी-सूनी आँखों से
बस देखता रहा,
आगत का स्वागत नहीं किया,
जीवन-रस नहीं पिया !
.
सदा....सदा की तरह
झर-झर सावन बरसा,

रतिकर कंपित वक्षस्थल ले
उमड़ीं
तड़पीं
श्याम घटाएँ
हरित सजल आँचल फैलाये,
पर,
नृत्य मयूरों ने नहीं किया,
भादों बीत गया नीरस
मौन गगन ने
कजली गीतों का स्वर नहीं दिया।
.
सदा... सदा की तरह
आयीं शारद-ज्योत्स्ना रातें
शीतल।
याद दिलाने
मांसल विधु-वदनी की बातें !
पर,
शुक्लाभिसारिका
निज गृह से नहीं हिली,
पथ —
सुनसान बनाये
प्रति निशि जागा,
शान्त सरोवर में
नहीं मोरपंखी कहीं चली !
.
सदा...सदा की तरह
लह-लह मधु-माधव आया,
नव पल्लव

रंग-बिरंगे पुष्पों के गजरे लाया
पर,
वासन्ती नहीं खिली,
मधुकण्ठी की पीड़ा भी नहीं सुनी !
.
बोझिल तिथियों का,
धूमिल स्मृतियों का,
एक बरस
बी...त...ग...या...!
.
• •
(124) नव वर्ष
.
हे नव वर्ष !
तुम्हारा स्वागत-सत्कार
चाहते हुए भी
न कर सका !
.
तुम्हारे शुभागमन के पूर्व
कई दिनों से
विविध आयोजनों की
रूपरेखा बनाने का विचार
मन में आता रहा,
न जाने
क्या-क्या अभिनव-अनूठा समाता रहा ;
पर,
कार्यरूप में
तनिक भी
परिणत न कर सका उसे !

.
हे नव वर्ष !
तुम आ गये
बिना किसी धूमधाम के ?
और मैं
तुम्हें प्यार भरी भुजाओं में
चाहते हुए भी
न भर सका !
.
हे नव वर्ष !
तुम सचमुच
कितने उदास हो रहे होगे !
तुम्हारे अभिनन्दन में
इस बार
एक क्या अनेक कविताएँ
लिखना चाहते हुए भी
एक पंक्ति भी तुम्हें
समर्पित न कर सका !
.
अरे, यह क्या हुआ ?
कुछ भी तो स्मरणीय विशिष्ट
घटित हो जाता—
जीवन-नाटक का
मंगलाचरण
या
पटाक्षेप !
पर,
कुछ भी तो नहीं हुआ ;

मात्र पूर्वाभ्यास का बोध होता रहा !
.
हे नव वर्ष !
तुम्हें जीवन-क्रमणिका में
महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने की साध लिए
जागता... सोता रहा !
चाहते हुए भी
न जी सका,
न मर सका !
.
• •
(125) मेरे ही लिए
.
शिशिर की
मूक
ठण्डी रात —
मेरे ही लिए !
.
सितारे सब अपरिचित
वृक्ष सोये
सामने बस एक
तम का गात —
मेरे ही लिए !
.
न जाने
किन अक्षम्य अभूत पापों का
कुफल ;
मधुलोक खोया
हर मनुज,

पर,
मात्र मैं—
परिश्रान्त विह्वल !
.
यह अकेली स्तब्ध
बोझिल
हिम ठिठुरती रात—
मेरे ही लिए !
.
• •
(126) सुकर : दुष्कर
.
महज़
दिन बिताना सरल है,
जीना कठिन !
.
ज़िन्दगी को काटना
कितना सहज है,
खण्डित व्यक्तित्व के
धागों
रेशों को
सहेजना
सँवारना
सीना कठिन !
.
केवल
समय-असमय
उगलने को गरल है
पीना कठिन !

महज़
दिन बिताना सरल है
जीना कठिन !
.
• •
(127) दिनान्त
.
आज का भी दिन
हमेशा की तरह
चुपचाप
बीत गया !
.
अनिच्छित
असह
ब्राह्ममुहूर्त का कर्कश
अलार्म बजा,
दिनागम की खुशी में
एक पक्षी भी न चहका,
भोर
घर-घर बाँट आयी स्वर्ण,
मेरे बन्द द्वारों पर
किसी ने भी
न दस्तक दी
न धीरे से किसी ने भी
पुकारा नाम !
.
प्रौढ़ा दोपहर
प्रत्येक की दैनन्दिनी में
लिख गयी

विश्रान्ति के क्षण ;
मात्र मुझको
ऊब
केवल ऊब !
.
अलसाया शिथिल
अब देखता हूँ
आ रही सन्ध्या
अरुणिमा,
तुम भला क्या दे सकोगी ?
मौन उत्तर था —
'अँधेरा....
घन अँधेरा !'
.
•   •

(128) अनुदर्शन

.
उड़ गये
ज़िन्दगी के बरस
रे कई,
राग सूनी
अभावों भरी
ज़िन्दगी के बरस
हाँ,
कई उड़ गये !
.
लौट कर
आयगा अब नहीं
वक़्त

जो — धूल में, धूप में
खो गया,
स्याह में
सो गया !
.
शोर में
चीखती ही रही ज़िन्दगी,
हर क़दम पर विवश,
कोशिशों में अधिक विवश !
.
गा न पाया कभी
एक भी गीत मैं हर्ष का,
एक भी गीत मैं दर्द का !
.
गूँजता रव रहा
मात्र :
संघर्ष....संघर्ष... संघर्ष !
विश्रान्ति के
पथ सभी
मुड़ गये !
ज़िन्दगी के बरस,
रे कई
देखते...देखते
उड़ गये !
.
• •
(129) अनुशय
.
हँसकर और रोकर

रे, बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !
.
जागकर दिन
रात सो कर
हाँ, बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !
होश में रह
या कि हो बेहोश
कैसे यह
बिता दी
ज़िन्दगी हमने ?
जी न पाये !
.
पाकर तनिक
पर, सब गँवाकर
हा, बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !
.
तरसकर
तड़पकर
बनते-बिगड़ते
मूक-मुखरित
एक यदि संगत —
असंगत अन्य

कुछ सपने निरखते ही
बिता दी
ज़िन्दगी हमने,
जी न पाये !
.
• •
(130) नियति
.

संदेहों का धूम भरा
साँसें
  कैसे ली जायँ !
.
अधरों में
विष तीव्र घुला
मधुरस
  कैसे पीया जाय !
.
पछतावे का ज्वार उठा
जब उर में
कोमल शय्या पर
  कैसे सोया जाय !
.
बंजर धरती की
कँकरीली मिट्टी पर
नूतन जीवन
  कैसे बोया जाय !
.
• •
(131) भिक्षा

.
संपीडित अँधेरा
भर दिया किसने
अरे !
बहूमूल्य जीवन-पात्र में मेरे ?
एक मुट्ठी रोशनी
दे दो
मुझे !
.
संदेह के
फणधर अनेकों
आह !
किसने
गंध-धर्मी गात पर
लटका दिये ?
विश्वास-कण
आस्था-कनी
दे दो
मुझे !
.
एक मुट्ठी रोशनी
दे दो
मुझे !
.
•
(132) विश्वास
.
जीवन में
पराजित हूँ,

हताश नहीं !
.
निष्ठा कहाँ ?
विश्वासघात मिला सदा,
मधुफल नहीं,
दुर्भाग्य में
बस
दहकता विष ही बदा !
.
अभिशप्त हूँ,
पग-पग प्रवंचित हूँ,
निराश नहीं !
.
क्षणिक हैं —
ग्लानि पीड़ा घुटन !
वरदान समझो
शेष कोई
मोह-पाश नहीं !
.
• •
(133) जीवन प्राप्त जो
.
जीने योग्य
जीवन के सुनहरे दिन —
सुकृत वरदान-से,
आनन्दवाही गान-से,
मधुमय-सरस-स्वर-गूँजते दिन
आह ! जीने योग्य !
हर पल

हर्ष पीने योग्य !
.
जीवन के
सतत प्रतिकूलता के दिन,
उदासी-खिन्नता
अति रिक्तता से सिक्त
बोझिल दिन —
अशुभ अभिशाप-से,
विष-दंश-वाही-ताप-से,
कटु विद्ध दुर्भर दिन
आह ! जीने योग्य !
हर पल
मर्ष पीने योग्य !
.
जीवन प्राप्त जो —
अच्छा
बुरा
अविराम जीने के लिए !
अनिवार्य जीने के लिए !
.
• •
(134) मोह-भंग
.
स्वीकार शायद
जो कभी भी था न
तुमको
भ्रांति उस अधिकार की
यदि आज
मानस में प्रकाशित हो गयी

सुन्दर हुआ
शुभकर हुआ !
.
अस्थिर
प्रवंचित मन !
न समझो —
प्राप्य
जीवन की
बड़ी अनमोल अति दुर्लभ
धरोहर खो गयी !
.
मूर्छा नहीं,
निश्चय
सजगता।
मोह का कुहरा नहीं,
परिज्ञान
जीवन-वास्तविकता।
.
अर्थ जीवन को मिलेगा अब
नये आलोक में,
उद्विग्न मत होना तनिक भी
शोक में !
.
• •
(135) दृष्टिकोण
.
अतीत का मोह मत करो,
अतीत —
मृत है !

उसे भस्म होने दो,
उसका बोझ मत ढोओ
शव-शिविका मत बनो !
शवता के उपासक
वर्तमान में ही
एक दिन
स्वयं निश्चेष्ट हो रहेंगे
अनुपयोगी
अवांछित
अरुचिकर —
जो व्यतीत है
अस्तित्वहीन है !
वह वर्तमान का नियंत्रक क्यों हो ?
वह वर्तमान पर आवेष्टित क्यों हो ?
वर्तमान को
अतीत से मुक्त करो,
उसे सम्पूर्ण भावना से
जियो,
भोगो !
वास्तविकता के
इस बोध से —
कि हर अनागत
वर्तमान में ढलेगा !
अनागत —
असीम है !

.
हृदय में दर्द है
तो
मुसकराओ !
.
दर्द यदि
अभिव्यक्त —
मुख पर एक हलकी-सी
शिकन के रूप में भी,
या
सजगता की
तनिक पहचान से उभरे
दमन के रूप में भी,
निंद्य है !
धिक् है !
स्खलित पौरुष्य !
.
उर में वेदना है
तो
सहज कुछ इस तरह गाओ
कि अनुमिति तक न हो उसकी
किसी को,
सिक्त मधुजा कण्ठ से
उल्लास गाओ !
पीत पतझर की
तनिक भी खड़खड़ाहट हो नहीं
मधुमास गाओ !
सिसकियों को

तलघरों में बन्द कर
नव नूपुरों की
गूँजती झनकार गाओ !
शून्य जीवन की
व्यथा-बोझिल उदासी भूलकर
अविराम हँसती गहगहाती
ज़िन्दगी गाओ !
महत् वरदान-सा जो प्राप्त
वह अनमोल
जीवन-गंधमादन से महकता
प्यार गाओ !
.
यदि हृदय में दर्द है
तो
मुसकराओ !
दूधिया
सितप्रभ
रुपहली
ज्योत्स्ना भर मुसकराओ !
.
• •
(137) संत्रस्त
.
दृष्टि-दोषों से सतत संत्रास्त
अर्थ-संगति हीन,
अद्भुत,
सैकड़ों पूर्वाग्रहों से ग्रस्त
हम,

सन्देह के गहरे तिमिर से घिर
परस्पर देखते हैं
अजनबी से !
और...
अनचाहे
विषैले वायुमण्डल में
घुटन के बोझ से
निष्कल तड़पते जब —
घहर उठता तभी
अति निम्नगामी
क्षुद्रता का सिन्धु,
अनगिनत
भयावह जन्तुओं से युक्त !
मनुजोचित सभी
शालीनता के बंधनों से मुक्त !

(138) वस्तु-स्थिति

सर्वत्र
कड़वाहट सुलभ
दुर्लभ मधुरता !
सर्वत्र
घबराहट प्रकट
जीवट विरलता !
सर्वत्र
झुलझलाहट-प्रदर्शन
लुप्त स्थिरता !

सर्वत्र
आडम्बर-बनावट
दूर कोसों वास्तविकता !
.
• •
(139) उपलब्धि
.
अप्राप्य रहा —
वांछित,
कोई खेद नहीं।
.
तथाकथित
आभिजात्य गरिमा के
अगणित आवरणों के भीतर
नग्न क्षुद्रता से परिचय,
निष्फलता की
उपलब्धि !
कोई खेद नहीं।
.
सहज प्रकट
तथाकथित
निष्पक्ष-तटस्थ महत् व्यक्तित्व का
अदर्शित अभिनय;
असफलता की
उपलब्धि !
कोई खेद नहीं।
.
• •
(140) स्वाँग
.

मुझे
कृत्रिम मुसकराहट से चिढ़ है !
कुछ लोग
जब इस प्रकार मुसकराते हैं
मुझे लगता है
डसेंगे !
अपने नागफाँस में कसेंगे !
.
यही
अप्रिय मुसकराहट
शिष्टाचार का जब
अंग बन जाती है,
कितनी फीकी
नज़र आती है !
.
मुझे
इस कृत्रिम फीकी मुसकराहट से
चिढ़
बेहद चिढ़ है !
.
• •
(141) विपर्यस्त
.
बुद्धि के उच्चतम शिखरों तक पहुँचे
हम
विज्ञान युग के प्राणी हैं
महान
    समुन्नत
    सर्वज्ञ !

.
हमारे लिए
जीवन के
सनातन सिद्धान्त
शाश्वत मूल्य
अर्थ-हीन हैं !
.
हमारे शब्द-कोश में
'हृदय'
मात्र एक मांस-पिण्ड है
जो रक्त-शोधन का कार्य करता है
तन की समस्त शिराओं को
ताज़ा रक्त प्रदान करता है,
उसकी धड़कन का रहस्य
हमारे लिए नितान्त स्पष्ट है,
कमज़ोर पड़ जाने पर
अथवा
गल-सड़ जाने पर
हम उसको बदल भी सकते हैं।
हृदय से सम्बन्धित
पूर्व-मानव का
समस्त राग-बोध
उसके
समस्त कोमल-मधुर उद्गार
हमारे लिए
उपहासास्पद हैं !
.
हमारे लिए

पूर्व-मानव की
पारस्परिक प्रणय भावनाएँ
विरह-वियोग जनित चेष्टाएँ
सब
बचकानी हैं
अस्वस्थ हैं
निरर्थक हैं !
.
यह हमारे लिए
मानव इतिहास में
समय का सबसे बड़ा अपव्यय है !
.
हमारे लिए
आकर्षण —
इन्द्रिय सुख की कामना का पर्याय !
हाव —
आंगिक अभिनय का अभ्यासगत स्वरूप,
नाट्य-शालाओं में
प्रवेश प्राप्त कर
सहज ही ग्राह्य!
प्रेमालाप —
कृत्रिम
चमत्कारपूर्ण वाणी-विलास !
मिलन —
मात्रा स्थूल इन्द्रिय सुख के निमित्त !
स्मृति —
ढोंग का दूसरा नाम
या

अभाव की पीड़ा !
प्रेम —
भ्रम / धोखा
अस्तित्वहीन
'ढाई आखर' का शब्द-मात्र !
.
• •
(142) ईर्ष्या
.
ईर्ष्या
करो नहीं,
ईर्ष्या से
डरो नहीं !
.
किसी की ईर्ष्या-अभिव्यक्ति
संकेतित हो
वाचिक हो
क्रियात्मक हो
तुम्हारी सफलता
बोधिका है !
आत्म-गहनता
शोधिका है !
.
उससे त्रस्त क्यों होते हो ?
इतने अस्तव्यस्त क्यों होते हो ?
.
ईर्ष्या
जितनी स्वाभाविक है
उसका दमन

उतना ही आवश्यक है।
.
ईर्ष्या का
दलन करो,
वरण नहीं !
.
ईर्ष्या-आश्रय को
सन्तुलित करो,
प्रगति-प्रेरित करो।
उसे विकास के
अवसर दो,
उसके हलके मानस में
गरिमा भर दो।
.
फिर कोई ईर्ष्या नहीं करेगा,
फिर कोई ईर्ष्या से नहीं डरेगा।
.
जिस दिन —
मानवता
ईर्ष्या के घातों-प्रतिघातों को
सह जाएगी,
उस दिन से —
वह मात्र
संचारी-भाव-विवेचन में
महत्त्वहीन हो
काव्य-शास्त्र का साधारण विषय
रह जाएगी !
.
• •

(143) आत्म-बोध

.

हम मनुज हैं —
मृत्तिका की सृष्टि
    सर्वोत्तम
    सुभूषित,
प्राणवत्ता चिद्द
सर्वाधिक प्रखर,
अन्तःकरण
    परिशुद्ध ;
प्रज्ञा
    वृद्ध !

.

लघुता —
  प्रिय हमें हो,
रजकणों की
अर्थ-गरिमा से
    सुपरिचित हों,
    परीक्षित हों।

.

मरण-धर्मा
मृत्यु से भयभीत क्यों हो ?
चेतना हतवेग क्यों हो ?
दुर्मना हम क्यों बनें ?
सदसत् विवेचक
मूढग्राही क्यों बनें ?

.

• •

(144) ऊहापोह

.
प्रश्न —
अविकल स्थिर
अपनी जगह पर।
पंगु
सारी तर्कना,
विखण्डित
कल्पना !
अनिश्चित की शिलाओं तले
रोपित प्रश्न !
.
सूत्राभाव
पूर्व...उत्तर...सर्वत्र
ठहराव !
.
यह कश-म-कश
और कब तक ?
विवश मनःस्थिति
और कब तक ?
और कब तक
ओढ़े रहोगे प्रश्न ?
उलझी ऊबट सतह पर।
.
सब पूर्ववत्
अपनी जगह पर।
.
• •
(145) परिवेश के प्रति
.

कितनी तीखी ऊमस से
परिपूर्ण गगन,
लहराती अग्नि-शिखाओं से
कितना परितप्त भुवन !
कितना क्षोभ-युक्त
भाराक्रांत
दमित
मानव-मन !
जीवन का
वातावरण समस्त
थका-हारा,
काराबद्ध !
.
आओ
इसको बदलें,
गतिमान करें,
मल्लार-राग से भर दें
जलवाह !
पवन-संघातों से
निःशेष करें
दिग्दाह !
.
• •
(146) वात्याचक्र
.
अंधड़
आ रहा सम्मुख
उमड़ता

सनसनाता
वेगवाही
धूलि-धूसर !
.
कुछ क्षणों में
घेर लेगा बढ़
तुम्हारा भी गगन !
जागो उठो
दृढ़ साहसिक मन
हो सचेत-सतर्क !
थपेड़े झेलने का प्रण
अभी
तत्काल
निश्चय आत्मगत कर।
.
अंधड़ों की शक्ति
तुमको तौलनी है,
संकटों पर
आत्मबल सन्नद्ध हो
जय बोलनी है,
प्राण की सोयी हुई
अज्ञात-मेधा को सचेतन कर !
.
हिमालय-सम
सुदृढ़ व्यक्तित्व के सम्मुख
गरजता क्रूर अंधड़
राह बदलेगा !
मरण का तीव्र धावन

तिमिर अंधड़
राह बदलेगा !
.
• •
(147) जीवन-संदर्भ
.
आओ
जीवन की गीता को
अभिनव संदर्भ प्रदान करें !
बदला
जब परिवेश मनुज का
आओ
नयी ऋचाओं का निर्माण करें !
.
नव मूल्यों को स्थापित कर
जीवन-धर्मी कविता के
अन्तर-बाह्य स्वरूपों को
अभिनव रचना दे !
जीवन्त नये आदर्शों की आभा दें !
जगमग स्वर्णिम गहने पहना दें !
.
जीवन की प्रतिमा को
नयी गठन
नव भाव-भंगिमा से सज्जित कर;
मानव को
चिर-इच्छित
संबंधों की गरिमा से
सम्पूरित कर
युग को महिमावान करें !

आओ
नव राहों के अन्वेषी बन
नूतन क्षितिजों की ओर
प्रवह प्रयाण करें !
.
• •
(148) वैषम्य
.
हर व्यक्ति का जीवन
नहीं है राजपथ —
    उपवन सजा
    वृक्षों लदा
    विस्तृत
    अबाधित
    स्वच्छ
    समतल
    स्निग्ध !
.
सम्भव नहीं
हर व्यक्ति को
उपलब्ध हो
    ऐसी सुगमता,
    इतनी सुकरता।
सम दिशा
सम भूमि पर
आवास सबके हैं नहीं प्रस्थित,
एक ही गन्तव्य
सबका है नहीं

जब अभिलषित।
.
कुछ को
पार करनी ही पड़ेंगी
तंग-सँकरी
कण्ट-कँकरीली
घुमावोंदार
ऊँची और नीची
जन-बहुल
अंधारमय
पगडण्डियाँ — गलियाँ
पसीने-धूल से अभिषिक्त,
प्रति पग पंक से लथपथ।
.
नहीं,
हर व्यक्ति का जीवन
सकल सुविधा सहित
आलोक जगमग
राजपथ !
.
जब भूमि बदलेगी,
मार्ग बदलेगा !
.
• •

डा. महेंद्रभटनागर, 110 बलवन्तनगर, गांधी रोड, ग्वालियर — 474 002 [म.प्र.]
फ़ोन : 0751- 4092908 / मो. 98 93 40 97 93

[क्रमशः]